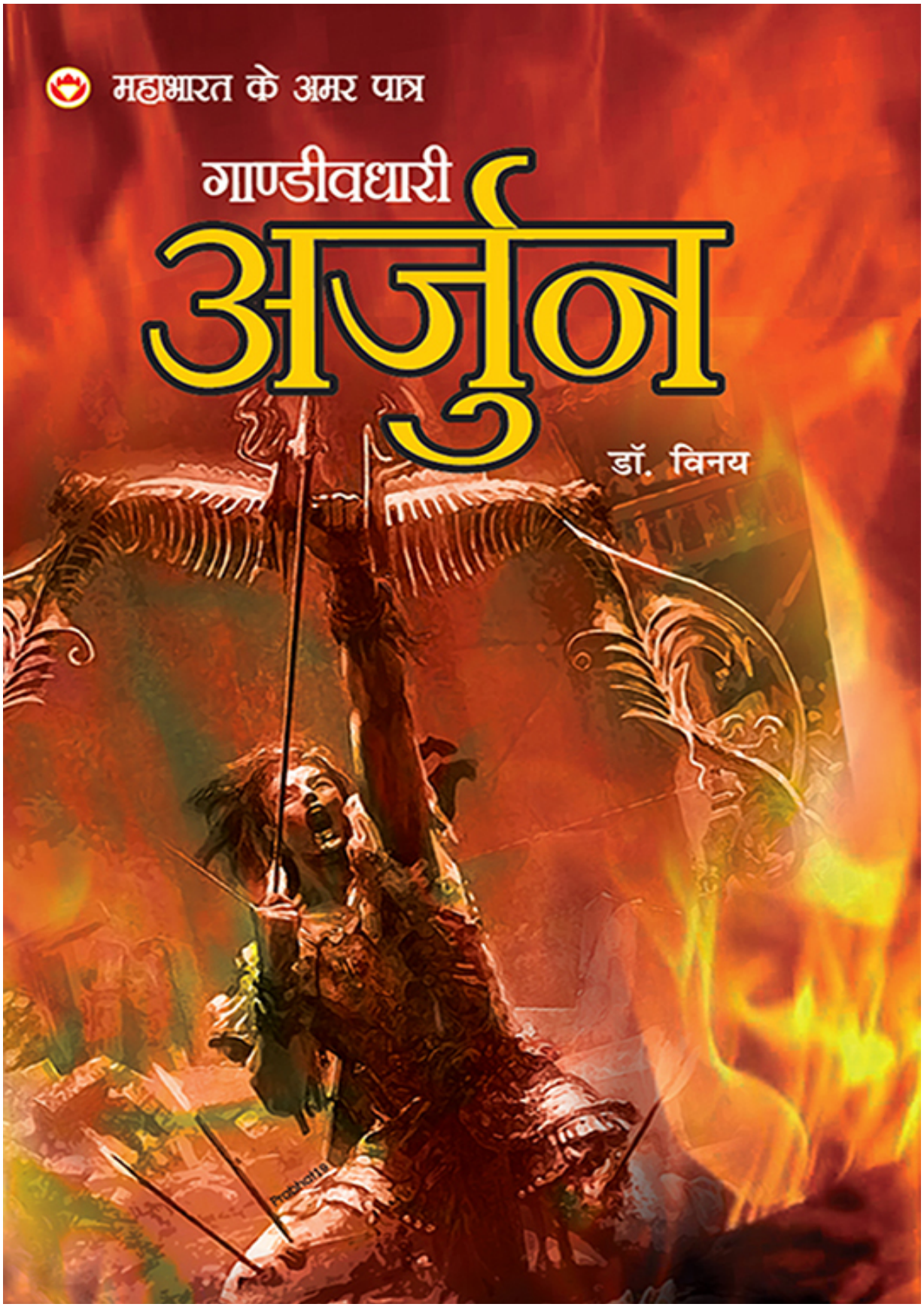
महाभारत के अमर पात्र
गाण्डीवधारी
अर्जुन
डॉ. विनय

Gandivdhari Arjun : Mahabharat Ke Amar Patra

Dr. Vinay

महाभारत के अमर पात्र

गाण्डीवधारी अर्जुन



eISBN: 978-93-5278-586-5

© प्रकाशकाधीन

प्रकाशक: डायमंड पॉकेट बुक्स (प्रा.) लि.

X-30 ओखला इंडस्ट्रियल एरिया, फेज-II

नई दिल्ली-110020

फोन: 011-40712100, 41611861

फैक्स: 011-41611866

ई-मेल: ebooks@dpb.in

वेबसाइट: www.diamondbook.in

संस्करण: 2017

गाण्डीवधारी अर्जुन

लेखक: डॉ. विनय

भूमिका

महाभारत भारतीय संस्कृति का अन्यतम ग्रंथ है। इसे पांचवां वेद कहा गया है। अनेक भारतीय-पाश्चात्य विद्वानों ने इसे महाकाव्य मानकर संस्कृति, दर्शन तत्व, चिंतन, भक्ति की सम्पूर्ण अभिव्यक्ति का मूल स्रोत माना है। स्वयं महाभारत में कहा गया है कि –

धर्मे चार्थे चकामे च मोक्षेच भरतर्षम।
यदि हास्ति तदन्यत्र यन्ने हास्ति न तत्क्वचित्।।

म. 1/62/53

['‘हे भरतश्रेष्ठ! धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के संदर्भ में जो कुछ इस ग्रंथ में है, वही और स्थानों पर है और जो इसमें नहीं है, वह कहीं नहीं है।’’]

और यह स्वयं सिद्ध है कि इतने महान ग्रंथ में जो वस्तु (कथा) होगी वह महानतम होगी क्योंकि कथा ही वह मूल आधार है जिससे सभ्यता, संस्कृति, दर्शन के विभिन्न आधार स्रोत सृजित होते हैं! कथा के साथ वस्तु के आधार रूप में चरित्र भी अपने गुण, कर्म, स्वभाव से लोकोत्तर होते हैं। यह मनुष्य की अत्यंत स्वाभाविक वृत्ति है कि वह लोक को इतना उठाता है कि लोकोत्तर हो जाए और लोकोत्तर को अपनी समझ सीमा में लाने के लिए... लोक का... या सामान्य बनाता है। महाभारत में ये दोनों स्थितियां विद्यमान हैं।

और, महाभारत में जिस विराट संस्कृति, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष के व्यवहार की आधारशिला रखी गई है, उसका वहन करते हैं योगीराज कृष्ण, भीष्म, द्रोण, कौरव, पाण्डव और प्रकृति शक्ति में कुंती, द्रौपदी तथा गांधारी जैसी सती! इनके साथ सांस्कृतिक विकास के आरोह-

अवरोह में सहयोगी होते हैं – कर्ण, द्रुपद तथा अन्य पात्र (चरित्र) जो सीधे महाभारत के रचना धरातल पर सक्रिय हैं।

इन सक्रिय चरित्रों के साथ पुराकाल के अन्य कथानक हैं जो इस रचना को भूत, वर्तमान और भविष्य की दृष्टि का आकार ग्रंथ बना देते हैं!

भक्ति की दृष्टि से महाभारत के प्रतिपाद्य हैं योगीराज कृष्ण अर्थात् महाभारत का अनुकूल पक्ष कृष्णत्व है और जो कृष्ण के अनुकूल नहीं, वह विरोधी है, अधर्म है साथ ही त्याज्य भी! इसी दृष्टि से महाभारत में आये अन्य पात्रों की स्थिति देखी जा सकती है पर ये सभी पात्र अपने व्यक्तित्व में विचित्र, उत्तेजक, प्रेरणाप्रद और मानवीय अनुभवों से भरे हैं। इनका एक धरातल महाभारत में वेदव्यास के शब्दों में व्यक्त होता है और उसके अतिरिक्त समय प्रवाह की अनुकूलता-प्रतिकूलता में उनके अनेक स्वर उभरते हैं, इसीलिए महाभारत में यह भी कहा गया है कि यह ग्रंथ युगों तक कवियों, रचनाकारों को आंदोलित करता रहेगा।

महाभारत के पात्रों में यदि आश्चर्यजनक दिव्यानुभाव है तो उतना ही मानवानुभाव भी! चाहे धृतराष्ट्र हों, अर्जुन हों, भीष्म हों... सब कहीं-न-कहीं सर्वोच्च भाव भूमि पर प्रतिष्ठित होकर कहीं-न-कहीं सामान्य भी बन जाते हैं! वे सहर्ष अपने बड़प्पन की चादर पर छोटेपन का धब्बा लगने देते हैं जिससे उनकी सहजता और विश्वसनीयता बनी रह सके।

हमने इन अमर पात्रों को औपन्यासिक शैली में चित्रित करने का प्रयास किया है। यह उपन्यास नहीं है, न जीवन चरित्र... कहीं कुछ दोनों का संगम बन पड़ा है। हमने पूरा प्रयास किया है कि उनका महाभारतीय चरित्र यथावत बना रह सके और उनमें से मानवीय सहजता की अभिव्यक्ति भी हो सके।

हम कहां तक सफल हैं! जब तक आप पढ़ेंगे नहीं, कैसे पता चलेगा?

– डॉ. विनय
25, बैंग्लो रोड
दिल्ली-110007

गाण्डीवधारी अर्जुन

जन्म

वह अमावस्या का दिन था, बड़े-बड़े ऋषि-महर्षि ब्रह्माजी के दर्शन के लिए ब्रह्मलोक की यात्रा कर रहे थे। मार्ग में हस्तिनापुर नरेश महाराज पाण्डु का आश्रम था। महाराज पाण्डु ने किंदम मुनि कुमार के द्वारा दिए शाप के पश्चाताप के कारण राज्य त्यागकर वानप्रस्थ जीवन ग्रहण किया था। ब्रह्माजी के दर्शन के लिए मुनियों को जाते देखकर पाण्डु भी अपनी पत्नी कुंती और माद्री के साथ उनके पीछे-पीछे चल दिए और मुनियों से पूछा– ''ब्रह्मन् आप कहां जा रहे हैं?''

यह ज्ञात होने पर कि वे सभी मुनि ब्रह्मा दर्शन के लिए जा रहे हैं, राजा ने कहा– ''मैं भी अपनी पत्नियों के साथ आपका अनुसरण करना चाहता हूं।''

''राजन! मार्ग में बहुत से दुर्गम स्थान हैं, भीड़ से ठसाठस भरी अप्सराओं की क्रीड़ा भूमि है, ऊंचे-नीचे उद्यान हैं, भयंकर पर्वत गुफाएं और नदियों के कगार हैं, चारों तरफ बर्फ-ही-बर्फ है, कहीं कोई वृक्ष नहीं दिखाई देता, न कोई पशु है न पक्षी, वहां केवल वायु जा पाती है या फिर सिद्ध महर्षि जाते हैं। आप ऐसे दुर्गम मार्ग से राजकुमारी कुंती और माद्री के साथ कैसे चल पाएंगे, अत: आप यह यात्रा स्थगित कर दीजिए।''

मुनियों से यह सुनकर पाण्डु सोच में पड़ गए और आगे बढ़ने वाले उनके कदम शिथिल पड़ गए। पाण्डु सोचने लगे कि वे संतानहीन हैं, इसलिए स्वर्ग का द्वार उनके लिए बंद है। पाण्डु का हृदय पुत्र न उत्पन्न कर पाने की अक्षमता में दहकने लगा। वह सोचने लगे, मनुष्य चार ऋण लेकर जन्म लेता है – पितृऋण, देवऋण, ऋषिऋण और मनुष्यऋण। यज्ञ से देवता, स्वाध्याय

और तपस्या से ऋषि तथा परोपकार से पाण्डु, मनुष्य ऋण से उऋण हो चुके हैं लेकिन पुत्र के अभाव में पितृऋण अभी उन पर शेष है।

मात्र यही अभिलाषा है कि कुंती और माद्री के गर्भ से पुत्रों का जन्म हो।

पाण्डु को इस प्रकार चिंतित देखकर ऋषियों ने कहा– ''हे राजन! आप चिंतित न हों, हम दिव्य दृष्टि से देख रहे हैं कि आप शीघ्र ही पुत्रवान होंगे और आपके देवताओं के समान पुत्र होंगे। आप देवताओं द्वारा प्रदत्त अपने अधिकार का प्रयोग करें।''

आश्चर्यपूर्वक पाण्डु ने देवताओं द्वारा प्रदत्त आशीर्वाद के बारे में मुनियों से पूछा– ''यह क्या रहस्य है?''

मुनियों ने पाण्डु को बताया– ''यह रहस्य आप देवी कुंती से पूछिएगा।''

महाराज पाण्डु के मन में ब्रह्म दर्शन के लिए जाने वाले ऋषि-मुनियों के साथ न जा पाने का दु:ख तो अवश्य हुआ किन्तु उनकी पत्नी देवी कुंती उन्हें पुत्रवान कर सकती है, यह रहस्य पाकर उनकी प्रसन्नता का कोई ठिकाना न रहा।

''आपका मनोरथ सफल होगा'' – रह-रहकर पाण्डु के, मुनियों के इस वाक्य से, मन में हिलोरें उठ रही थीं। हो-न-हो देवी कुंती के पास अवश्य ही कोई दैवी शक्ति है जिसके बारे में ये सभी मुनिगण जानते हैं – किन्तु कुंती ने यह रहस्य उस पर अब तक प्रकट क्यों नहीं किया?

पाण्डु जानते थे किंदम ऋषि कुमार के शाप के कारण वह पत्नी सहवास में अक्षम थे।

आश्रम लौटने पर पाण्डु इस अवसर की ताक में रहने लगे कि कुंती से किस प्रकार यह बात की जाए?

एक दिन स्वयं कुंती ने महाराज पाण्डु को चिंतित देखकर कहा– ''महाराज! कई दिनों से देख रही हूं आप कुछ खोए-खोए से, अनमने से रहने लगे हैं। क्या किसी नई चिंता ने जन्म ले लिया है?''

''हां, मेरी चिंता तुम जानती हो देवी! मैं पितृऋण का भार लेकर मरना नहीं चाहता लेकिन मेरे पास इसका हल भी तो नहीं है। स्वयं प्रयत्न करता हूं तो तुम्हारे वैधव्य का ख्याल आ जाता है। मैं क्या करूं, क्या उपाय करूं? यह समझ ही नहीं आ रहा है। पुत्रोत्पत्ति के लिए कुछ तुम ही मार्ग सुझाओ देवी! मैं तो हिम्मत ही हार बैठा हूं।''

''आर्य पुत्र! जब मैं छोटी थी, महाराज कुंती भोज के यहां एक बार मुनि दुर्वासा आए थे। मुनि के क्रोधी स्वभाव को जानकर पिता बहुत चिंतित हो गए थे। मेरी शील भावना और आतिथ्य भाव को देखकर पिता ने मुनि की सेवा का भार मुझे सौंप दिया।

यह मेरा सौभाग्य ही था कि मेरी सेवा सुश्रुषा से मुनि अत्यंत प्रसन्न हो गए। उन्होंने जब जो आदेश दिया, जब जो चाहा, मैंने तत्काल प्रस्तुत कर दिया। मुझे भी उनके स्नेह में अत्यंत सुख का अनुभव होने लगा था।

जब मुनि राज्य में अपने विश्राम की अवधि समाप्त कर जाने लगे तो मेरी सेवा से प्रसन्न होकर उन्होंने मुझे एक गुरु मंत्र दिया।

यह गुरु मंत्र आज भी मेरे पास है। उसके प्रभाव से मैं किसी भी देवता का आह्वान करके उससे पुत्र प्राप्त कर सकती हूं। मैंने यह रहस्य आपको संकोचवश ही नहीं बताया था।''

यह सुनकर पाण्डु के हर्ष की सीमा न रही। वे सामान्य मर्यादा भूल गए और देवी कुंती को अपने अंक से लगा लिया, उसी समय माद्री भी वहां आ गई। माद्री को देखकर कुंती लजा गई लेकिन आश्रम में एक पति की ये दोनों पत्नियां सुख-दु:ख में सहभागिनी थीं, अत: यह समाचार उन सभी को प्रसन्नता देने वाला था।

कुंती ने महाराज से कहा– ''देव! यदि आप आज्ञा करें तो मैं मंत्र की सत्यता का प्रदर्शन करने के लिए देवराज धर्म को बुलाकर उनके गुण-रूप धर्म समान पुत्र को प्राप्त करने का यत्न कर सकती हूं।''

यह सुनकर पाण्डु ने कुंती से कहा– ''ठीक है देवी! तुम विधिपूर्वक प्रात:काल स्नान-पूजा करके मंत्र से धर्मराज का आह्वान करो। वे तीनों लोकों में श्रेष्ठ पुण्यात्मा हैं। उनसे जो संतान होगी वह नि:संदेह धार्मिक होगी। उनके द्वारा प्राप्त पुत्र कभी अधर्मी नहीं होगा।''

तब कुंती ने धर्मराज का आह्वान किया और उनकी पूजा करके वह मंत्र जपने लगी। उसके प्रभाव से धर्मराज सूर्य के समान प्रकाशमान चमकीले विमान पर बैठकर कुंती के पास आए।

धर्मराज ने कुंती से कहा– ''देवी! बता, मैं तेरे लिए क्या करूं ? कौन-सा वर दूं?''

कुंती ने मुस्कराकर कहा– ''अपने ही समान गुण-रूप वाला पुत्र दीजिए।''

यह सुनकर धर्मराज ने कुंती को योग मुद्रा में देखा और धीरे-धीरे धर्म-अंश कुंती के गर्भ में प्रविष्ट हो गया। गर्भ प्रविष्टि के पश्चात् धर्मराज अपनी किरणें समेटकर आकाश मार्ग से अपने देवलोक को चले गए। नियत समय पर कुंती ने धर्मराज युधिष्ठिर को जन्म दिया।

कुछ दिन बाद वायु के द्वारा कुंती ने भीम को जन्म दिया। तीसरी बार कुंती ने देवराज इंद्र का आह्वान किया, क्योंकि पाण्डु को यह चिंता हो गई थी कि यदि ऐसा पुत्र हो जाता जो संसार में सबसे बड़ा धनुर्धारी होता तो वह मेरे कुल को प्रकाशित करता। यदि देवराज इंद्र किसी प्रकार संतुष्ट हो जाएं और कुंती को पुत्र प्रदान करें तो निश्चित ही उनकी यह इच्छा भी पूरी हो सकती है।

यह सोचकर भीम की उत्पत्ति के बाद पाण्डु ने देवी कुंती से एक वर्ष कठोर व्रत करने के लिए कहा। पाण्डु स्वयं भी सूर्य के समान एक पैर पर खड़े होकर तप करने लगे। पाण्डु की तपस्या से प्रसन्न होकर इंद्र प्रकट हुए और बोले– ''तुम्हें मैं एक विश्व विख्यात, ब्राह्मण, गौ और सुहृदों का सेवक पुत्र प्रदान करूंगा।'' इसके बाद कुंती ने पाण्डु के आदेश पर ही देवराज इंद्र का आह्वान किया।

देवराज इंद्र ने कुंती के आह्वान पर उपस्थित होकर कहा– ''हे कुन्ती! कहो, मेरे लिए क्या आदेश है? जो स्वयं ही संसार में यथेष्ट को पाने में सक्षम है, उसने मुझे किसलिए स्मरण किया?''

''देव! आप तो सब कुछ जानने वाले हैं। मैंने आपका आह्वान आपके समान ही तेजस्वी, वीर धनुर्धारी और क्षत्रियों में अपने शौर्य के बल पर अन्याय के विरुद्ध लड़ने वाले, वीर साहसी पुत्र की कामना के लिए किया है।''

देवराज ने कुंती के ऐसा कहने पर अपने अंश रूप से कुंती के गर्भ में प्रवेश किया और उन्हें जो पुत्र प्रदान किया, वही अर्जुन कहलाया।

अर्जुन के समय आकाशवाणी हुई और यह गुरु गंभीर ध्वनि आई– ''हे कुंती! यह बालक कार्त्तवीर्य अर्जुन और भगवान शंकर के समान पराक्रमी तथा इंद्र के समान अपराजित होकर तुम्हारा यश बढ़ाएगा, जैसे विष्णु ने अपनी मां अदिति को प्रसन्न किया था, वैसे ही यह तुम्हें प्रसन्न करेगा। तुम्हारा यह पुत्र बहुत से सामंतों को पराजित करेगा, राजाओं पर विजय प्राप्त करके अश्वमेध यज्ञ करेगा। स्वयं भगवान रुद्र भी इसके पराक्रम से प्रसन्न होकर इसे पाशुपत अस्त्र प्रदान करेंगे। यह इंद्र की आज्ञा से निवात कवच आदि राक्षसों का संहार करेगा और अपने श्रम एवं कर्तव्य निष्ठा से सारे दिव्य अस्त्र प्राप्त करेगा।''

यह आकाशवाणी सुनकर कुंती ने ही नहीं आश्रमवासियों और समस्त प्राणियों ने प्रसन्नता प्रकट की। ऋषि, मुनि तथा सभी देवगण प्रसन्न हुए। आकाश में दुंदुभि बजने लगी। पुष्प वर्षा होने लगी। इंद्रादि देवगण, सप्तर्षि, प्रजापति गंधर्व, अप्सरा आदि दिव्य वस्त्राभूषणों से सुसज्जित होकर अर्जुन के जन्म दिवस का आनंदोत्सव मनाने लगे।

देवों का यह उत्सव ऋषि-मुनियों के साथ साधारण नर-नारियों ने भी देखा।

इसी प्रकार कुंती के मंत्र के प्रभाव से माद्री ने भी मंत्र जाप करके अश्विनी कुमार का आह्वान किया और नकुल-सहदेव को जन्म दिया।

वास्तव में देवी कुंती के गर्भ से उत्पन्न ये पांचों पाण्डव देवपुत्र थे। अर्जुन इनमें सर्वश्रेष्ठ एवं सबसे बलशाली और युद्ध विद्या में प्रवीण थे।

शत श्रंग पर्वत पर रहने वाले ऋषियों ने पाण्डु को बधाई दी और सभी बालकों को आशीर्वाद दिया। उनका नाम युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल व सहदेव रखा। ये सभी एक-एक वर्ष के अंतर से उत्पन्न हुए थे। बचपन में ऋषि और ऋषि पत्नियों ने इनके प्रति बड़ी प्रीति रखी। राजा पाण्डु भी अपने पुत्र और पत्नियों सहित बड़ी प्रसन्नतापूर्वक वहां निवास करने लगे।

माद्री के साथ सहवास करते समय पाण्डु मृत्यु को प्राप्त हुए। माद्री पाण्डु के साथ ही सती हो गई और कुंती पांचों पाण्डवों के साथ हस्तिनापुर लौट आई।

बालक अर्जुन की शिक्षा-दीक्षा

हस्तिनापुर आने पर कुंती के पांचों पुत्रों के वैदिक संस्कार हुए। आनंदपूर्वक सभी भाई माता सहित घर पर रहते हुए बड़े होने लगे। बालपन में वे खुशी-खुशी दुर्योधन आदि के साथ खेलते और उनसे बढ़-चढ़कर अपने करतब दिखाते थे।

दौड़ने में, निशाना लगाने में, खाने में, धूल उड़ाने में भीम सभी दुर्योधन भाइयों को हरा देते थे। भीम बलिष्ठ थे अत: पीछे से उन्हें पकड़कर उनका सिर टकरा देते थे। दस-दस को अकेले अंक में भरकर जल में डुबो देते थे। अर्जुन इन सबसे अलग गंभीर प्रकृति के थे, वे केवल अपने अभ्यास में ही लगे रहते थे।

पितामह भीष्म ने गुरु द्रोण को कौरव राजकुमारों को धनुर्विद्या की शिक्षा देने हेतु नियुक्त किया। द्रोणाचार्य पितामह भीष्म से सम्मानित होकर हस्तिनापुर में रहने लगे और धृतराष्ट्र तथा पाण्डु के पुत्रों को शिष्य रूप में स्वीकार करके धनुर्वेद की विधिपूर्वक शिक्षा देने लगे।

द्रोणाचार्य ने एक दिन अपने सभी शिष्यों को एकांत में बुलाकर कहा– ''मेरे मन में एक इच्छा है, अस्त्र शिक्षा समाप्त होने के बाद क्या तुम लोग मेरी इच्छा पूरी करोगे?''

यह सुनकर सभी राजकुमार चुप रह गए, किन्तु अर्जुन ने बड़े उत्साह से कहा– ''आचार्य! मैं दीक्षित होकर आपकी इच्छा अवश्य पूरी करूंगा, आप आश्वस्त होवें।''

अर्जुन की यह प्रतिज्ञा सुनकर द्रोणाचार्य अत्यंत प्रसन्न हुए। उन्होंने अर्जुन को गले लगा लिया।

द्रोणाचार्य अपने शिष्यों को भांति-भांति के अस्त्रों, शस्त्रों की शिक्षा देने लगे। इस समय द्रोण के पास यदुवंशी राजकुमार सूतपुत्र कर्ण भी शिक्षा ग्रहण कर रहे थे।

अर्जुन के मन में धनुर्वेद में पारंगत होने की बड़ी लगन एवं रुचि थी। अर्जुन द्रोणाचार्य की सेवा भी खूब करते थे, इसलिए शिक्षा, बाहुबल तथा उद्योग की दृष्टि से समस्त शस्त्रों के प्रयोग,

फुर्ती और कुशलता में अर्जुन ही सबसे बढ़-चढ़कर निकले।

गुरु द्रोणाचार्य अपने पुत्र अश्वत्थामा पर विशेष अनुराग रखते थे। उन्होंने शिष्यों को पानी लाने के लिए जो पात्र दिए थे उनमें औरों के तो देर से भरते थे किन्तु अश्वत्थामा सबसे पहले भरकर ले आता था और अपने पिता द्रोण से गुप्त रहस्य सीख लेता था। अर्जुन ने यह बात ताड़ ली। अब अर्जुन ने वारुणास्त्र से अपना पात्र अश्वत्थामा से भी पहले भर लिया और आचार्य के पास शीघ्र ही पहुंच गए। इस कारण अर्जुन की शिक्षा-दीक्षा अश्वत्थामा से किसी भी प्रकार कम नहीं हुई।

एक दिन भोजन करते समय तेज हवा के कारण दीपक बुझ गया, अर्जुन ने देखा बिना भटके हाथ सीधा मुंह के पास ही आता है, यानी अभ्यास के लिए प्रकाश की आवश्यकता नहीं। अब अर्जुन अंधेरे में ही बाण चलाने का अभ्यास करने लगे।

एक रात में धनुष की टंकार सुनकर द्रोणाचार्य अर्जुन के पास आए और बोले– ''वत्स! मैं ऐसा यत्न करूंगा कि संसार में तुमसे बड़ा दूसरा कोई धनुर्धारी न हो सके। यह मैं सत्य कह रहा हूं।''

आचार्य द्रोण ने सभी शिष्यों को हाथी, घोड़ों, रथ और पृथ्वी का युद्ध, गदायुद्ध, तलवार चलाना, तोमरप्राश शक्ति आदि के प्रयोग एवं संकीर्ण युद्ध की शिक्षा दी किन्तु यह सब सिखाने में अर्जुन की ओर उनका विशेष ध्यान रहता था।

द्रोणाचार्य के शिक्षा कौशल की बात देश-देशांतर में पहुंच गई। दूर-दूर से राजागण, राजकुमार उनके शिष्यों का कौशल देखने आने लगे।

द्रोणाचार्य का अर्जुन पर इतना अगाध प्रेम था कि जब उन्होंने जाना कि 'एकलव्य' जो एक भील बालक है, धनुर्विद्या में, केवल उन्हीं का नाम लेकर अभ्यास से प्रवीण हो गया है तो उन्होंने उसका दाहिने हाथ का अंगूठा ही दक्षिणा में मांग लिया।

एक बार आचार्य द्रोण ने अपने शिष्यों की परीक्षा लेनी चाहिए। द्रोणाचार्य ने कारीगर से नकली चिड़िया बनवाई तथा उसे कुमारों से छिपाकर वृक्ष पर टांग दिया, तदनंतर राजकुमारों से कहा– ''धनुष पर बाण चढ़ाकर तैयार हो जाओ, तुम्हें निशाना लगाकर उस चिड़िया के सिर पर निशाना लगाना होगा।''

सबसे पहले युधिष्ठिर आए। धनुष-बाण लेकर जैसे ही उन्होंने ऊपर की ओर देखा। गुरु ने पूछा– ''क्या देख रहे हो वत्स?''

''मुझे तो वृक्ष, पत्ते, शाखाएं, चिड़िया सब कुछ दिखाई दे रहा है।''

''पीछे हट जाओ, तुम निशाना नहीं साध सकते।'' इसी प्रकार एक-एक करके सभी राजकुमार आए और पीछे हट गए। कोई भी गुरु के प्रश्न का सही उत्तर नहीं दे पाया।

अंत में अर्जुन की बारी आई। गुरु ने पूछा– ''वत्स! तुम्हें क्या दिखाई पड़ रहा है?''

''मुझे तो मात्र चिड़िया की वह आंख का काला तिल दिखाई पड़ रहा है जिसका मुझे लक्ष्य बेधन करना है और कुछ भी दिखाई नहीं पड़ रहा गुरुदेव!''

गुरु ने आदेश दिया– ''लक्ष्य साधो अर्जुन और बाण चलाओ।''

अर्जुन ने तत्काल बाण से उस चिड़िया की आंख बेध दी। अर्जुन का यह पराक्रम और कौशल देखकर द्रोणाचार्य को विश्वास हो गया, अवश्य ही यह वीर राजा द्रुपद के विश्वासघात का बदला लेने में सक्षम है।

एक बार गंगा स्नान करते समय मगर ने गुरु द्रोण की टांग पकड़ ली। वे कराह उठे, शोर सुनकर सभी शिष्य पधार गए। गुरु पुकार रहे थे, मगर को मारकर मुझे बचाओ। सभी राजकुमार हक्के-बक्के से उपाय सोचते रहे कि अर्जुन ने एक साथ लक्ष्य करके पांच बाण मारकर मगर का मुंह खोल दिया और गुरु का पैर सुरक्षित बच गया। इसके बाद ही आचार्य द्रोण ने अर्जुन को ब्रह्म सिर नाम के दिव्य अस्त्र के प्रयोग की विधि बताई।

सब प्रकार से अपने शिष्यों को निपुण देखकर द्रोणाचार्य ने महाराज धृतराष्ट्र और भीष्म से कहा– ''ये राजकुमार सब प्रकार की विद्या में निपुण हो चुके हैं। आपकी इच्छा और अनुमति हो तो एक दिन सबके सामने इनका कौशल दिखाया जाए।''

धृतराष्ट्र अत्यंत प्रसन्न हुए और बोले– ''आचार्य आपने हमारा बहुत बड़ा उपकार किया है, अत: जिस प्रकार चाहें, जिस समय और जिस जगह चाहें, आप यह कौशल आयोजित कर सकते हैं। राज्यसेवक आपकी प्रत्येक आज्ञा का पालन करेंगे।''

रंगमण्डप सजा दिया गया, देवताओं की पूजा करके, वेदपाठी ब्राह्मणों ने वेदपाठ करवाया, इसके पश्चात् राजकुमारों ने पहले धनुष-बाण का कौशल दिखाया, उसके बाद रथ, हाथी और घोड़ों की सवारी का चातुर्य, मल्ल कौशल, तलवार के हाथ और पैंतरे दिखाए। दुर्योधन और भीम ने गदायुद्ध भी दिखाया, पर आचार्य के हस्तक्षेप से बात आगे नहीं बढ़ी।

अंत में आचार्य ने वाद्ययंत्र बंद कराकर, गंभीर स्वर में घोषणा की– ''अब आप लोग अर्जुन का अस्त्र कौशल देखें। ये मुझे सबसे अधिक प्यारे हैं।''

अर्जुन ने पहले आग्नेय अस्त्र से आग उत्पन्न की, फिर वारुणास्त्र से जल उत्पन्न करके उसे बुझा दिया। वायव्यास्त्र से आंधी चलाई और परजन्यास्त्र से बादल उत्पन्न किए। भौमास्त्र से पृथ्वी और पर्वतास्त्र से पर्वत प्रगट कर दिए।

अंतर्धानास्त्र से वे स्वयं छिप गए, क्षण-भर में लंबे और फिर छोटे होकर उन्होंने सबको चकित कर दिया। इसी प्रकार कभी रथ पर, कभी रथ के धुरे पर, कभी पृथ्वी पर फुर्ती और कौशल के साथ अर्जुन ने अपना प्रदर्शन किया।

अर्जुन के इस प्रकार कौशल प्रदर्शन के समय रंगभूमि में कर्ण ने प्रवेश किया और बोले– ''अर्जुन घमण्ड न करना, जो कौशल तुमने दिखाए हैं, उन्हें मैं भी दिखा सकता हूं।''

कर्ण की बात सुनकर अर्जुन एक बार तो लज्जित से हो गए और उन्हें क्रोध आ गया। उन्हें लगा कि मानो भरी सभा में कर्ण उनका तिरस्कार कर रहा है।

दोनों में वाक्युद्ध के बाद शस्त्र युद्ध की संभावना देखकर, कृपाचार्य ने कर्ण से कुल-गोत्र पूछकर उन्हें श्रीहीन कर दिया और यह कौशल प्रदर्शन का आयोजन बिना किसी व्यवधान के संपन्न हो गया।

द्रोणाचार्य ने देखा कि सभी राजकुमार अस्त्र विद्या में पूरी तरह से निपुण हो चुके हैं तो उन्होंने सोचा कि अब गुरु दक्षिणा लेने का समय आ गया है।

आचार्य ने सभी राजकुमारों को अपने पास बुलाया और कहा– ''अब मैं तुम्हें पूरी तरह दीक्षित कर चुका हूं। तुम्हें मेरी गुरुदक्षिणा देनी है।''

राजकुमार करबद्ध आचार्य के सम्मुख खड़े हो गए और बोले– ''आज्ञा दें, गुरुदेव! हम क्या वस्तु भेंट करें।''

''तुम लोग पांचाल राज द्रुपद को युद्ध में पकड़कर मेरे सम्मुख ले आओ, ये ही मेरे लिए सबसे बड़ी गुरुदक्षिणा है।''

दुर्योधन, कर्ण, दु:शासन आदि अन्य राजकुमार आवेश में आ गए और परस्पर स्पर्धा करते हुए स्वयं यह कार्य करने के लिए उद्यत हो गए।

कौरवों का यह घमण्ड देखकर अर्जुन ने आचार्य से कहा– ''इन लोगों को ही पहले अपना पराक्रम दिखा लेने दीजिए। हमारी बारी इनके बाद आएगी।''

अर्जुन यह जानते थे कि कौरव राजकुमार पांचाल राज को नहीं जीत पायेंगे, इसलिए उसने पहले दुर्योधन को ही जाने दिया।

यही हुआ, दुर्योधन और कर्ण आदि अपना-सा मुंह लेकर वापस लौट आए। इसके पश्चात् पाण्डवों ने आचार्य के चरणों में प्रणाम किया और रथ पर सवार होकर चले। युधिष्ठिर को

अर्जुन ने रोक दिया।

अभी द्रुपद आदि वीर कौरवों को हराकर हर्षनाद कर ही रहे थे कि अर्जुन का रथ दिशाओं को गुंजाता हुआ वहां आ पहुंचा। भीम ने गदा लेकर काल के समान होकर द्रुपद की सेना में प्रवेश किया और सारे सैन्य विन्यास को तहस-नहस कर दिया।

अर्जुन के बाणों ने पांचाल राज की सारी सेना को ढक लिया। द्रुपद का धनुष और ध्वजा कटकर भूमि पर गिर गए, जैसे ही द्रुपद ने दूसरा धनुष उठाना चाहा, अर्जुन ने उनके रथ पर जाकर उन्हें पकड़ लिया।

अर्जुन के हाथों बंधे हुए द्रुपद द्रोणाचार्य के सम्मुख उपस्थित हो गए। उनका घमण्ड चूर हो गया था। धन और राज्य छिन चुका था। अब वे सर्वथा द्रोणाचार्य के अधीन हो गए थे।

''द्रुपद! मैंने तुम्हारे अहंकार को चूर करके बलपूर्वक तुम्हारे देश और नगर को रौंद डाला है। मैं चाहता तो जब तुमने अपनी सभा में मेरा अपमान किया था, उसी समय तुम्हारा घमण्ड चूर करके, अपने अपमान का बदला ले सकता था, परंतु ब्राह्मण कभी क्षत्रियों पर शस्त्र नहीं चलाता, इसलिए मैंने अपने क्षत्रिय शिष्यों के द्वारा अपने अपमान का बदला लिया है। अब तुम पूरी तरह से शत्रु के अधीन हो। तुम्हारा जीवन भी इन्हीं के अधीन है। पहले ये ही तुम्हारे मित्र थे, परंतु अब शत्रु हो गए हैं। क्या तुम पुरानी मित्रता को चलाए रखना चाहते हो?''

द्रोणाचार्य ने द्रुपद से कहा– ''तुम अपने प्राणों के बारे में चिंता मत करो, हम तो ब्राह्मण हैं, जो स्वभाव से ही क्षमाशील होते हैं और फिर हम लोग तो बचपन में साथ खेला भी करते थे, वही प्रेम संबंध अब भी हमारे बीच है। हे राजन! मैं तो यह भी चाहता हूं कि हम लोग फिर से वैसे ही मित्र बन जाएं।''

द्रोणाचार्य ने द्रुपद को यह वर दिया कि तुम आधे राज्य के स्वामी रहो, ताकि हमारी मित्रता के योग्य रह सको क्योंकि द्रुपद ने ही द्रोण से कहा था कि जो राजा नहीं है, वह राजा का सखा नहीं हो सकता, इसलिए आधा राज्य तो द्रोणाचार्य ने अपने पास रख लिया और आधा राज्य

द्रुपद को दे दिया। गंगाजी के दक्षिण तट का राज्य तो द्रुपद को दिया और उत्तर तट का स्वयं अपने पास रखा।

द्रोणाचार्य के इस प्रकार के व्यवहार को देखकर द्रुपद बहुत लज्जित हुए और बोले– ''ब्रह्मन! आप जैसे पराक्रमी, उदार हृदय महात्मा के लिए यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है, मैं तो आपका अनंत प्रेम चाहता हूं।''

द्रोणाचार्य ने राजा द्रुपद को मुक्त कर दिया और आधा राज्य दे दिया। अब द्रुपद माकंदी प्रदेश के श्रेष्ठ नगर काम्पिल्य में रहने लगे।

इस प्रकार द्रोण ने द्रुपद को पराजित करके भी उनकी रक्षा ही की थी, परंतु द्रुपद फिर भी संतुष्ट नहीं थे।

द्रोणाचार्य अहिच्छत्र प्रदेश की अहिच्छत्रा नगरी में रहने लगे, जो उन्हें अर्जुन के पराक्रम से प्राप्त हुई थी।

द्रौपदी स्वयंवर

लाक्षागृह के षड्यंत्र से बचकर वन में भ्रमण करते हुए पाण्डव अपनी माता कुंती के साथ राजा द्रुपद के देश, उनकी पुत्री द्रौपदी के स्वयंवर महोत्सव को देखने के लिए रवाना हुए। मार्ग में उन्हें बहुत से ब्राह्मणों के दर्शन हुए। ब्राह्मणों ने पाण्डवों से पूछा कि आप लोग कहां से चलकर, किस स्थान को जा रहे हैं? इस पर युधिष्ठिर ने कहा कि हम सब भाई एक साथ ही रहते हैं और एक चक्रा-नगरी से आ रहे हैं।

जब ब्राह्मणों ने उनसे कहा कि इस समय आपको पांचाल देश के राजा द्रुपद की राजधानी में चलना चाहिए। वहां स्वयंवर का एक बहुत बड़ा उत्सव होने वाला है तो युधिष्ठिर ने उनकी बात स्वीकार कर ली और वे सभी साथ चल दिए।

युधिष्ठिर अपने सभी भाइयों को साथ लेकर उन ब्राह्मणों के साथ जा रहे थे कि तभी मार्ग में उन्हें महर्षि वेदव्यास मिल गए। हरे-भरे जंगल और खिले कमलों से शोभायमान सरोवर देखते हुए ये सभी लोग आगे बढ़ने लगे। जब पाण्डवों ने देखा कि द्रुपद नगर पास आ गया है तो वे एक कुम्हार के घर में रहने लगे। वे सभी भिक्षा मांगकर अपना जीवन-यापन करने लगे। किसी को यह पता नहीं चल पाया कि ये पाण्डुपुत्र हैं ।

राजा द्रुपद अपनी पुत्री द्रौपदी का विवाह अर्जुन के साथ करना चाहते थे, परंतु अपना यह विचार उन्होंने किसी पर प्रगट नहीं होने दिया था। राजा द्रुपद ने एक ऐसा धनुष बनवाया जो किसी और से झुक न सके। ऐसा तो उन्होंने अर्जुन को पहचानने के लिए किया था। आकाश में एक ऐसा यंत्र टंगवा दिया जो चक्कर काटता रहता था, उसी के ऊपर लक्ष्य बेधना था।

द्रुपद ने यह घोषणा कर दी थी कि जो वीर इस धनुष पर डोरी चढ़ाकर इन सजे हुए बाणों से घूमने वाले यंत्र के छिद्र में से लक्ष्यबेध करेगा, उसी के साथ द्रौपदी का विवाह होगा। स्वयंवर का स्थान, चारों ओर से बड़े-बड़े महल, परकोटे, खाइयों और फाटकों से घिरा हुआ था, चारों ओर बंदनवारें लटक रही थीं। सभी वीर राजकुमार स्वयंवर मण्डप में आकर अपने लिए बनाए

हुए विमानों के समान मंचों पर बैठने लगे। युधिष्ठिर आदि पाण्डव भी ब्राह्मणों के साथ राजा द्रुपद का वैभव देखते हुए आए और उन्हीं के साथ बैठ गए।

द्रुपद कुमारी सुंदर वस्त्र और आभूषण पहने उस रंगमण्डप में आई। उसके हाथ में सोने की वरमाला थी। धृष्टद्युम्न ने सभी राजकुमारों को संबोधित करते हुए कहा– ''सभी अतिथि नरपतियों और राजकुमारों! आप लोग ध्यान से सुनें, ये धनुष और बाण हैं, आप लोगों को घूमते हुए यंत्र के छिद्र में से अधिक-से-अधिक पांच बाणों के द्वारा लक्ष्यबेध करना है, जो भी वीर इस कार्य को करेगा, उसी के साथ मेरी बहन द्रौपदी का विवाह होगा।''

इसके पश्चात् धृष्टद्युम्न ने द्रौपदी की ओर देखकर कहा– ''देखो धृतराष्ट्र के बलवान पुत्र दुर्योधन, दुर्विषह, दुर्मुख, दुष्प्रश्रषर्ण, विविंशति, विकर्ण, दुःशासन, युयुत्सु आदि वीरवर कर्ण को साथ लेकर तुम्हारे लिए यहां आए हैं। बड़े-बड़े यशस्वी और कुलीन नरपति, शकुनि, वृषक आदि भी यहां आए हैं। अश्वत्थामा, भोज, मणिमान, सहदेव, जयत्सेन, राजा विराट, सुशर्मा, चेकिस्तान, पौण्डुक, वासुदेव, भगदत्त, शल्य, शिशुपाल, जरासंध और बहुत से राजा, महाराजा यहां उपस्थित हैं। इन पराक्रमी राजाओं में से जो भी इस लक्ष्य का भेदन कर दे, तुम उसी के गले में वरमाला डाल देना।''

जब धृष्टद्युम्न सभी राजाओं का परिचय दे रहा था, उसी समय वहां रुद्र, आदित्य, वसु, अश्विनी कुमार, साध्य, मरुदगण, यमराज और कुबेर आदि देवता भी उपस्थित हो गए थे। दैत्य, गरुड़, नाग, देवर्षि, गंधर्व, बलराम, श्रीकृष्ण और अन्य बहुत से लोग महोत्सव को देखने के लिए उपस्थित हो गए थे।

धृष्टद्युम्न के परिचय कराने के उपरांत सभी राजकुमारों ने धनुष पर डोरी चढ़ाने की चेष्टा की, परंतु उन्हें ऐसा झटका लगता कि वे धरती पर गिरकर बेहोश हो जाते। सभी द्रौपदी को पाने की लालसा छोड़कर अपने-अपने स्थान पर बैठ गए। दुर्योधन आदि को निराश देखकर कर्ण उठा, उसने धनुष को उठाया और उस पर डोरी चढ़ा दी। वह तो क्षण-भर में लक्ष्य को भी

बेध देता, परंतु तभी द्रौपदी जोर से बोल उठी– ''मैं सूतपुत्र का वरण नहीं करूंगी।'' कर्ण ने यह सुनकर सूर्य की ओर देखा और धनुष को नीचे रख दिया। जब सभी लोग निराश हो गए तो शिशुपाल डोरी चढ़ाने के लिए आया, परंतु धनुष के उठाते ही वह धरती पर गिर गया; यही दशा जरासंध की भी हुई।

जब बड़े-बड़े प्रभावशाली राजा लक्ष्यबेध न कर सके तो सभी लोग सहम गए, वे सभी एक-दूसरे का मुंह देख रहे थे, कोई कुछ नहीं बोल रहा था। उसी समय अर्जुन के मन में यह बात आई कि अब चलकर मैं ही लक्ष्य का भेदन करूं।

अर्जुन ब्राह्मणों के समाज में खड़े हो गए। परम वीर और अत्यंत सुंदर अर्जुन को धनुष चढ़ाने के लिए तैयार देखकर ब्राह्मणों ने सोचा कि कहीं यह हमारा उपहास न करवा दे। कहीं ऐसा न हो कि इसी कारण से राजा लोग हम ब्राह्मणों से द्वेष रखने लगें। कुछ लोग यह भी कह रहे थे कि यह उत्साही वीर है, इसका मनोरथ अवश्य ही पूरा होगा। यदि इसमें शक्ति न होती तो यह ऐसी हिम्मत ही नहीं करता। तपस्वी और दृढ़निश्चयी सभी कार्य कर सकता है, उसके लिए कुछ भी असंभव नहीं है। परशुराम ने युद्ध में क्षत्रियों को जीत लिया। महर्षि अगस्त्य ने समुद्र का पानी पी लिया। आप लोगों को तो इसे आशीर्वाद देना चाहिए कि यह अपने लक्ष्य में सफल हो सके। इस प्रकार से ब्राह्मणों ने अर्जुन को आशीर्वाद दिया।

अर्जुन ने धनुष के पास पहुंचकर उसकी प्रदक्षिणा की, भगवान शंकर और श्रीकृष्ण को सिर झुकाकर मन-ही-मन प्रणाम किया तथा फिर धनुष को उठा लिया। जिस धनुष को बड़े-बड़े वीर नहीं उठा सके, उसे अर्जुन ने बिना किसी परिश्रम के उठा लिया और उस पर डोरी चढ़ा दी। अभी लोगों की आंखें अर्जुन पर ठीक से जम भी नहीं पाई थीं कि उसने पांच बाण उठाकर उसमें से एक लक्ष्य पर चलाया और वह यंत्र के छिद्र में से होकर धरती पर गिर पड़ा। चारों ओर कोलाहल मच गया, अर्जुन के सिर पर दिव्य पुष्पों की वर्षा होने लगी। अर्जुन को देखकर

द्रुपद के हर्ष की सीमा ही नहीं रही। उन्होंने मन-ही-मन यह निश्चय किया कि अवसर पड़ने पर मैं इस वीर की अपनी पूरी सेना के साथ सहायता करूंगा।

जब युधिष्ठिर ने देखा कि अर्जुन ने अपना काम कर लिया है तो वे नकुल और सहदेव को लेकर वहां से चल दिए। द्रौपदी वरमाला लेकर अर्जुन के पास आई और उसे अर्जुन के गले में डाल दिया। ब्राह्मणों ने अर्जुन को गले से लगाया और वे द्रौपदी को साथ लेकर रंगभूमि से बाहर आ गए।

जब राजाओं ने देखा कि द्रुपद तो अपनी कन्या का विवाह एक ब्राह्मण से करना चाहते हैं तो वे बहुत क्रोधित हुए और एक-दूसरे से कहने लगे– ''राजा द्रुपद ने हमारा अपमान किया है, यह हमें कुछ नहीं समझता, इसलिए इसे मार डालना चाहिए। क्या हम लोगों में से कोई भी ऐसा वीर नहीं है जिसे ये अपनी कन्या के योग्य समझे। स्वयंवर तो क्षत्रियों के लिए होता है, उसमें ब्राह्मण को आने का कोई अधिकार नहीं है। यदि इसकी कन्या हम लोगों को वरण नहीं करती तो उसे आग में डाल देना चाहिए।''

ऐसा निश्चय करके सभी राजाओं ने अपने शस्त्र उठा लिए और राजा द्रुपद को मारने के लिए दौड़ पड़े। ऐसा देखकर राजा द्रुपद डर गए और वे ब्राह्मणों के पास गए। द्रुपद को भयभीत और राजाओं को आक्रमण के लिए आता देख भीमसेन और अर्जुन उनके बीच में आ गए। राजाओं ने अर्जुन और भीमसेन पर ही आक्रमण कर दिया। यह देखकर ब्राह्मणों ने कहा कि हम सभी तुम्हारे साथ हैं, परंतु अर्जुन ने उन्हें रोक दिया और बोले कि आप लोग तो एक ओर खड़े होकर तमाशा देखिए। इन लोगों के लिए तो मैं अकेला ही काफी हूं। अर्जुन धनुष चढ़ाकर भीमसेन के साथ पर्वत की तरह अविचल से खड़े हो गए। जब कर्ण आदि पास आए तो वे उन पर टूट पड़े। कर्ण के पास आने पर अर्जुन ने ऐसे बाण खींच-खींचकर मारे कि कर्ण वहीं पर अचेत हो गए। दोनों ही वीर एक-दूसरे को जीतने के लिए अपने-अपने हाथ दिखाने लगे।

अर्जुन की वीरता से प्रभावित होकर कर्ण ने कहा– ''आपने तो ब्राह्मण होकर भी ऐसे हाथ दिखाए हैं कि मेरी प्रसन्नता की सीमा नहीं है। आपके मुंह पर विषाद की रेखाएं भी नहीं हैं और आपका हस्त कौशल भी विलक्षण है कहीं आप स्वयं ही धनुर्वेद या परशुराम तो नहीं हैं। मुझे तो ऐसा लगता है कि जैसे स्वयं विष्णु या इंद्र ही मुझसे युद्ध कर रहे हैं। यदि मैं क्रोध में भरकर युद्ध करूं तो इंद्र तथा अर्जुन के अतिरिक्त मुझसे कोई भी नहीं जीत सकता।''

अर्जुन ने कर्ण से कहा– ''मैं धनुर्वेद या परशुराम तो नहीं हूं, हां मैं सभी शस्त्रों का ज्ञाता और एक श्रेष्ठ ब्राह्मण हूं। गुरु की कृपा से ब्रह्मास्त्र और इंद्रास्त्र का मुझे अच्छा अभ्यास है। मैं तो तुम्हें जीतने के लिए खड़ा हूं, तुम अपना जोर आजमाओ।''

अर्जुन को अजेय मानकर कर्ण पीछे हट गया।

जिस समय अर्जुन और कर्ण में आपस में युद्ध हो रहा था, उस समय शल्य और भीमसेन आपस में लड़ रहे थे, दोनों में घमासान युद्ध हो रहा था, तरह-तरह के दांव करके वे घूंसों की चोट करते। अंत में भीमसेन ने शल्य को धरती पर गिरा दिया, परंतु उसने शल्य को मारा नहीं। यह देखकर सभी ब्राह्मण आश्चर्य कर रहे थे।

इस प्रकार भीमसेन ने शल्य को पछाड़ दिया और उधर कर्ण भी पीछे हट गया तो सबकी सम्मति से युद्ध बंद कर दिया गया। श्रीकृष्ण ने पाण्डवों को पहचान लिया था, इसीलिए उन्होंने राजाओं को समझाया– ''इस व्यक्ति ने धर्म के अनुसार ही द्रौपदी को प्राप्त किया है, इसलिए इससे युद्ध करना उचित नहीं है।''

श्रीकृष्ण के समझाने पर सभी लोग शांत हो गए और अपने निवास स्थान को लौट गए। भीमसेन और अर्जुन भी द्रौपदी को साथ लेकर अपने निवास स्थान कुम्हार के घर की ओर चल दिए।

जब भिक्षा लेकर लौटने का समय बीत चुका तो माता कुंती को चिंता हो गई, तरह-तरह के विचार उनके मन को परेशान करने लगे। वे सोचने लगीं कि कहीं धृतराष्ट्र या दुर्योधन ने उनके

पुत्रों का कुछ अनिष्ट तो नहीं कर दिया। कभी उनके मन में यह विचार आता कि कहीं पुत्रों की राक्षसों से तो मुठभेड़ नहीं हो गई। माता कुंती इस प्रकार से चिंतित हो ही रही थीं कि तीसरे पहर भीम और अर्जुन द्रौपदी को साथ लिए घर पर आ गए।

जब कुंती अपने पुत्रों के आने की प्रतीक्षा कर रही थीं कि तभी भीमसेन और अर्जुन ने घर में प्रवेश किया और अपनी माता से कहा– ''मां! आज हम लोग यह भिक्षा लाए हैं।''

माता कुंती उस समय घर के भीतर थीं। उन्होंने अपने पुत्रों को तथा भिक्षा को देखे बिना ही कहा– ''बेटा! पांचों भाई मिलकर उसका उपभोग करो।''

बाहर निकलकर जब कुंती ने देखा कि यह तो साधारण भिक्षा नहीं है, यह तो राजकुमारी है तब उन्हें बड़ा पश्चाताप हुआ। वे कहने लगीं कि हाय! यह मैंने क्या कह कह दिया। वे तुरंत ही द्रौपदी का हाथ पकड़कर युधिष्ठिर के पास ले गईं और बोलीं– ''बेटा! जब भीम और अर्जुन द्रौपदी को लेकर भीतर आए; तब मैंने बिना देखे ही कह दिया कि तुम सब लोग मिलकर इसका उपभोग करो। मैंने आज तक कोई झूठी बात नहीं कही है, अब तुम ही ऐसा कोई उपाय बताओ कि जिससे द्रौपदी का कोई अधर्म नहीं हो और मेरी बात भी झूठी न हो।''

युधिष्ठिर ने जब माता कुंती को इस प्रकार से चिंतित देखा तो उसने माता को आश्वासन देते हुए कहा कि ऐसा ही होगा और उसने अर्जुन को बुलाकर कहा– ''भाई! तुमने मर्यादा के अनुसार द्रौपदी को प्राप्त किया है, अब तुम विधिपूर्वक अग्नि प्रज्ज्वलित करके उसका पाणिग्रहण करो।''

इस पर अर्जुन ने कहा– ''भाईजी! मैं ऐसा अधर्म का कार्य नहीं कर सकता। सत्पुरुषों ने ऐसा आचरण कभी नहीं किया है। पहले विवाह आपका होगा, उसके बाद भीमसेन का, तब मेरा विवाह होगा। मेरे बाद फिर नकुल और सहदेव का होगा। इसलिए इस राजकुमारी का विवाह तो आपके साथ ही होना चाहिए। मेरा तो यही मन है। आगे आप अपनी बुद्धि से धर्म, यश और हित के लिए जैसा करना चाहें, वैसी हमें आज्ञा दें।''

अर्जुन की बात सुनकर सभी चकित होकर इस प्रेम वार्तालाप को सुन रहे थे। द्रौपदी के सौंदर्य, माधुर्य और सौशील्य से मुग्ध होकर सभी भाई एक-दूसरे को देख रहे थे। द्रौपदी उन सभी के मन में बस गई थी। युधिष्ठिर ने अपने भाइयों के मुख को देखकर उनके मन की बात जान ली थी। अत: उन्होंने निश्चयपूर्वक यह कहा कि द्रौपदी हम सभी भाइयों की पत्नी होगी। यह सुनकर सभी भाई बहुत प्रसन्न हुए।

श्रीकृष्ण ने स्वयंवर में पाण्डवों को पहचान तो लिया ही था। वे अपने बड़े भाई बलराम के साथ पाण्डवों के निवास स्थान पर आए। वहां पर उन्होंने धर्मराज युधिष्ठिर के चरणों का स्पर्श किया और फिर अपना परिचय दिया। पाण्डवों ने उनका प्रेम से स्वागत-सत्कार किया और कुशल क्षेम पूछी। इसके पश्चात् युधिष्ठिर ने श्रीकृष्ण से कहा– ''हम लोग तो यहां पर छिपकर रह रहे थे फिर आपने हमें कैसे पहचान लिया?''

इस पर कृष्ण ने कहा– ''क्या लोग छिपी हुई आग को नहीं ढूंढ लेते। आज भीमसेन और अर्जुन ने जिस पराक्रम का परिचय दिया है, वह पाण्डवों के अतिरिक्त और किसमें हो सकता है। यह तो बड़े ही सौभाग्य की बात है कि दुर्योधन और पुरोचन की चाल सफल न हो सकी और आप लोग लाक्षागृह से बचकर निकल आए।''

युधिष्ठिर ने कहा– ''अब हम लोग अधिक देर तक यहां नहीं रह पायेंगे, वरना लोगों को पता चल जाएगा।''

युधिष्ठिर से अनुमति लेकर कृष्ण वहां से अपने स्थान को चल दिए।

जिस समय भीम और अर्जुन द्रौपदी को लेकर कुम्हार के घर की ओर जा रहे थे, उस समय धृष्टद्युम्न उनके पीछे-पीछे चल रहा था। उसने सब ओर अपने कर्मचारियों को नियुक्त कर दिया था और वह स्वयं सजग होकर पाण्डवों के पास बैठा रहा। वह उनके सभी काम बड़ी ही सावधानी से देख रहा था। चारों भाइयों ने भिक्षा लाकर अपने बड़े भाई युधिष्ठिर के आगे रख दी। कुंती ने द्रौपदी से कहा कि पुत्री पहले तुम इस भिक्षा में से देवताओं का अंश निकालो। फिर

ब्राह्मणों को भिक्षा दो, आश्रितों को दो, बचे हुए का आधा भीमसेन को दे दो और आधे में से छः हिस्से करके हम खा लेंगे। द्रौपदी ने अपनी सास की आज्ञा का पालन किया। भोजन करने के बाद उसने सबके लिए कुश का आसन बिछाया। सभी ने अपने-अपने मृगचर्म बिछा लिए और धरती पर ही सो गए। पाण्डवों का सिरहाना दक्षिण दिशा में था। सिर की ओर तो माता कुंती थीं और पैरों की ओर द्रौपदी सो गई।

जब सभी ने अपना-अपना स्थान ले लिया तो आपस में बातचीत शुरू हो गई। सोते समय वे लोग आपस में रथ, हाथी, गदा, तलवार आदि की ऐसी-ऐसी बातें कर रहे थे, मानो वे कोई बहुत बड़े सेना अधिकारी हों।

जब दुर्योधन आदि कौरवों को यह पता चला कि पाण्डव जीवित हैं तो वे बड़े निराश हुए, लेकिन जनभावना का ध्यान रखते हुए महाराज धृतराष्ट्र ने उन्हें ससम्मान हस्तिनापुर लाने के लिए विदुर को भेजा।

पाण्डवों के आने पर युधिष्ठिर को खाण्डवप्रस्थ का राज्य प्रदान कर दिया गया। पाण्डव भाइयों ने खाण्डवप्रस्थ को अपनी कर्मभूमि मानकर घोर श्रम से उसे खुशहाल बना लिया और सभी भाई प्रसन्नतापूर्वक रहने लगे।

अर्जुन का वनवास

राजसभा लगी हुई थी। सभी पाण्डव राजसभा में अपने-अपने आसनों पर विराजमान थे। उसी समय देवर्षि नारद पधार गए। देवर्षि का आगमन सुनकर महारानी द्रौपदी भी वहां पधार गईं। नारदजी ने रानी द्रौपदी को आशीर्वाद दिया और आसन पर विराजमान हो गए।

द्रौपदी के चले जाने पर नारदजी ने पाण्डवों से कहा– ''तुम पांचों भाइयों की एक पत्नी है इसलिए तुम लोगों को उसके साथ व्यवहार का एक नियम बना लेना चाहिए, जिससे आपस में झगड़े या विवाद की कोई संभावना न रहे। इससे हेल-मेल भी बना रहेगा और आपस में कभी फूट भी न पड़ेगी।''

युधिष्ठिर के पूछने पर नारदजी ने कहा– ''सुंद और उपसुंद भाइयों में अपार स्नेह था किन्तु एक तिलोत्तमा के कारण वे दोनों एक-दूसरे के शत्रु हो गए। मेरा तुम पर अतिशय अनुराग है, अत: ऐसा न हो कि तुम्हारे यहां भी सुंद-उपसुंद की कथा की आवृत्ति हो जाए?''

यह सुनकर सभी भाइयों ने प्रतिज्ञा की कि जब एक भाई द्रौपदी के पास होगा तो दूसरा कदापि नहीं जाएगा और यदि कोई भी नियम का उल्लंघन करेगा तो वह बारह वर्ष वन में ब्रह्मचारी बनकर तपस्या करेगा।

पाण्डवों से इस प्रकार नियम बनवाकर नारदजी ने वहां से विदा ली और अपने भ्रमण को निकल गए।

इसी प्रकार हंसी-खुशी समय बीतता गया। चारों ओर शांति-ही-शांति थी। अकस्मात एक ब्राह्मण को कुछ लुटेरों ने लूट लिया और उसकी गायें छीनकर ले गए।

वह ब्राह्मण करुण क्रन्द्रन करता हुआ महाराज के दरबार में आया और कहने लगा– ''पाण्डव! तुम्हारे राज्य में दुष्टात्मा और क्षुद्र लुटेरे मेरी गायें छीनकर ले गए। तुम दौड़कर उन्हें

बचाओ।''

ब्राह्मण तो अपने आवेश में था। कहने लगा– ''जो राजा प्रजा से कर लेकर भी उसकी रक्षा नहीं करता, वह तो नि:संदेह पापी है। मैं ब्राह्मण हूं। मेरे लिए गाय का छिन जाना, मेरे धर्म का नाश है। तुम्हें चाहिए कि तुम उन लुटेरों पर आक्रमण करके उन्हें पराजित करो और मेरी गायें मुझे वापिस दिलाओ।''

अर्जुन ने ब्राह्मण का करुण क्रन्दन सुना तो पहले उसे ढाढस बंधाया, किन्तु अर्जुन के सामने समस्या यह थी कि ब्राह्मण असमय आया था।

जिस कक्ष में महाराज युधिष्ठिर द्रौपदी के साथ विश्राम कर रहे थे, उसी कक्ष में उनके सारे शस्त्र रखे थे। नियमानुसार अर्जुन उस कक्ष में नहीं जा सकते थे।

अर्जुन के सामने धर्मसंकट आकर खड़ा हो गया। एक ओर परिवार का नियम, दूसरी ओर ब्राह्मण की करुण पुकार, वे ऐसे में करें तो क्या करें?

अंत में यही निश्चय किया कि ब्राह्मण का पशुधन लौटाकर उसके आंसू पोंछना पहला कर्तव्य है, यदि इसकी उपेक्षा हो गई तो राजधर्म संकट में पड़ जाएगा। हम भाइयों की निंदा होगी। दूसरी ओर प्रतिज्ञा भंग होने पर पाप लगेगा और प्रायश्चित के लिए वन में जाना पड़ेगा। वन में तो उसे ही जाना पड़ेगा न, अत: उसने राजधर्म की रक्षा हेतु ब्राह्मण के पक्ष में कक्ष से शस्त्र ले आने का निर्णय ही किया।

नियम भंग के कारण जो भी प्रायश्चित करना होगा, वह कर लेगा। इस समय तो इस दीन ब्राह्मण की गायों की रक्षा करना ही क्षत्रिय का सर्वोपरि धर्म है। वह स्वयं के जीवन से भी बढ़कर है।

यह सोचकर नि:संकोच अर्जुन महाराज युधिष्ठिर के कक्ष में चले गए। महाराज से अनुमति लेकर धनुष उठाया और बाहर आकर बोले– ''चलो ब्राह्मण देवता! अभी वे लुटेरे अधिक दूर

नहीं गए होंगे। उनसे गौधन की रक्षा की जाए।''

थोड़ी ही देर में अर्जुन ने बाणों के भीषण प्रहार से लुटेरों का रास्ता बंद कर दिया, उन्हें घेर लिया। शीघ्र ही वे लुटेरे प्राणहीन हो गए। ब्राह्मण को उनकी गायें वापस मिल गईं।

नागरिकों ने अर्जुन की इस वीरता का प्रदर्शन देखकर अत्यंत प्रसन्नता प्रकट की, किन्तु अर्जुन भीतर से खिन्नता का अनुभव कर रहा था।

राजमहल में लौटने पर अर्जुन ने युधिष्ठिर से कहा– ''भाईजी! मैंने आपके एकांत ग्रह में अनाधिकार प्रवेश करके प्रतिज्ञा तोड़ी है, इसलिए मुझे बारह वर्ष के लिए ब्रह्मचर्य व्रत धारण करते हुए वन में तपस्या करनी होगी। अत: प्रायश्चित के लिए मुझे वन जाने की आज्ञा देवें।

अर्जुन के मुख से ऐसी बात सुनकर युधिष्ठिर शोक में पड़ गए। उन्होंने व्याकुल होकर अर्जुन से कहा– ''यदि तुम मेरी बात मानते हो तो सुनो! जो मैं कहता हूं, उसे मानो। यदि तुमने नियम भंग किया भी है तो मैं तुम्हें उस दोष से मुक्त करता हूं और तुम तो मेरे छोटे भाई हो, तुम्हारा अपराध तो क्षम्य है, इसलिए इस बात को इतना गंभीर लेने की आवश्यकता ही नहीं है।

हां, यदि छोटा भाई स्त्री के पास बैठा हो तो बड़े भाई का जाना पाप है और फिर तुमने अपने हित में तो यह नियम भंग नहीं किया। राजधर्म के लिए, परिवार सुख का त्याग तो करना ही पड़ता है। ब्राह्मण की गौ रक्षा के हित तुमने क्षत्रिय धर्म का निर्वाह किया है। तुम तो पुरस्कार के अधिकारी हो।''

''हे अर्जुन! तुम वनवास का विचार त्याग दो। इसमें न मेरा अपमान हुआ है, न धर्म की हानि।''

युधिष्ठिर से इस प्रकार नियम भंग का निवारण सुनकर भी अर्जुन को संतोष नहीं हुआ।

''नहीं भाई! नहीं, ऐसा नहीं है। फिर आपने ही तो कहा है धर्मपालन में बहानेबाजी नहीं करनी चाहिए। मैं अपने शस्त्र की शपथ खाकर कहता हूं कि अपने सत्य पथ को कभी नहीं छोडूंगा।''

ऐसा कहते हुए अर्जुन ने वन की दीक्षा ली और बारह वर्ष तक वन के लिए चल पड़े।

अर्जुन के साथ बहुत से वेद-वेदांग के ज्ञाता, अध्यात्मचिंतक, भवत्भक्त, त्यागी ब्राह्मण, कथावाचक, वानप्रस्थ और भिक्षाजीवी भी चल पड़े।

इस प्रकार इन लोगों के साथ चलने से स्थान-स्थान पर कथाएं होतीं, प्रभु स्मरण, भजन-कीर्तन होता। इस यात्रा में सैकड़ों वन, सरोवर, नदी, तीर्थ, देश तथा समुद्र के दर्शन करते हुए ये लोग हरिद्वार पहुंच गए।

एक दिन अर्जुन स्नान करने के लिए गंगाजी में उतरे। वे स्नान तर्पण करके हवन करने के लिए बाहर निकलने ही वाले थे कि नाग कन्या उलूपी ने कामासक्त होकर उन्हें जल के भीतर ही खींच लिया और अपने भवन में ले गई।

उस भवन में पहुंचकर अर्जुन ने देखा, यज्ञीय अग्नि प्रज्ज्वलित हो रही है। वहां अर्जुन ने हवन किया और अग्निदेव की पूजा-अर्चना की। तत्पश्चात् उस नाग कन्या उलूपी से पूछा– ''सुंदरी तुम कौन हो? ऐसा अद्भुत साहस करके मुझे किस स्थान पर ले आई हो?''

अर्जुन से इस प्रकार अपने लिए सुंदरी संबोधन सुनकर उलूपी उसकी कुलशीलता से प्रभावित हो गई और कहने लगी– ''हे स्वामी! मैं ऐरावत वंश के कौख्य नाग की कन्या उलूपी हूं। आपको स्नान करते देखकर कामासक्त हो गई। मैं आप पर मुग्ध हो गई और प्रेम करने लगी। मुझे लगने लगा कि आपके अतिरिक्त मेरी अन्य दूसरी कोई गति नहीं है। मेरी विनती है कि आप मेरी अभिलाषा पूर्ण करें और मुझे स्वीकार करें।''

यहां भी अर्जुन के समक्ष एक नया धर्मसंकट खड़ा हो गया। उसने विनम्र होकर कहा– ''हे कोमलांगिनी! मेरा संकट भी तो सुन लो, मैंने धर्मराज युधिष्ठिर की आज्ञा से बारह वर्ष ब्रह्मचर्य व्रत पालन करते हुए वनवास करने का नियम ले रखा है। मैं कर्म में स्वाधीन नहीं हूं।''

''हे राजीव लोचनी! मैं तुम्हें प्रसन्न तो करना चाहता हूं किन्तु मैंने कभी असत्य भाषण नहीं किया, अत: तुम इसमें मेरी सहायता करो कि मुझे झूठे वचन या अधर्म आचरण का पाप न लगे।''

''मैं जानती हूं किन्तु यह नियम द्रौपदी के संदर्भ में सीमित है। मैं इस नियम के अंतर्गत नहीं आती और साथ ही आर्त-रक्षा भी तो पुरुष का परमधर्म है। मैं काम तप्त आपके सामने निरीह होकर रुदन कर रही हूं। क्या आपका मेरे प्रति कोई कर्तव्य नहीं बनता? यदि आपने इस कामातुर दशा में मेरी इच्छा पूर्ण नहीं की तो मैं अपने प्राण दे दूंगी। इसका पाप भी आपको ही लगेगा, किन्तु मेरी इच्छा पूर्ण करके, मेरे आर्त की रक्षा करके, मेरे प्राण बचाकर आपके धर्म का लोप नहीं होगा। अत: आप मुझे प्राणदान देकर धर्म को अर्जित करें।''

अब अर्जुन निरुत्तर हो गए और इस प्रकार उस नागकन्या के मोह मंत्र में बिंधे अर्जुन ने उस कामासक्त उलूपी की प्राण रक्षा करते हुए वह रात्रि उसके कक्ष में बिताई और उसे कामतुष्ट किया।

दूसरे दिन अर्जुन वहां से निकलकर हरिद्वार आ गए। चलते समय उस नागकन्या उलूपी ने उनसे कहा– ''किसी भी जलचर प्राणी से आपको भय नहीं होगा। सब जलचर आपके अधीन होंगे।''

लौटने पर अर्जुन ने यह घटना ब्राह्मणों को सुनाई। इसके बाद वे सभी लोग हिमालय पर्वत की तराई के क्षेत्र में चले गए।

यहां अगस्त्यवट, वशिष्ठ पर्वत, भृगुतुंग आदि तीर्थों में विचरण करते हुए, ऋषि-मुनियों के सत्संग में इनका समय व्यतीत होने लगा। यहां अर्जुन ने ब्राह्मणों को अनेक गायें दान कीं तथा अंग, वंग और कालिंग आदि देशों के तीर्थों के दर्शन किए।

जो कुछ ब्राह्मण अर्जुन के साथ रह गए थे वे भी कलिंग देश की सीमा से उनकी अनुमति पाकर लौट गए।

यहां से होते हुए अर्जुन महेंद्र पर्वत होते हुए मणिपुर पहुंचे। यहां चित्रवाहन नाम का राजा राज्य करता था। राजा की एक सर्वांग सुंदरी कन्या थी। उसका नाम चित्रांगदा था।

मणिपुर में वास करते हुए एक दिन अर्जुन ने भ्रमण करते हुए चित्रांगदा को देखा। वह यह शीघ्र ही जान गए कि यह यहां की राजकुमारी है।

अर्जुन ने बड़े विनम्र शब्दों में महाराज चित्रवाहन को अपना परिचय देते हुए कहा– ''महाराज! मैं एक कुलीन क्षत्रिय हूं, आप अपनी कन्या का विवाह मुझसे कर दीजिए।'' पूरा परिचय पूछने पर अर्जुन ने बताया– ''मैं हस्तिनापुर नरेश महाराज पाण्डु का पुत्र हूं।''

महाराज चित्रवाहन बड़े प्रसन्न हुए, लेकिन उन्होंने अर्जुन से कहा– ''श्रेष्ठवर! एक निवेदन मेरा है, कुल परंपरा के अनुसार हमारे वंश में एक ही संतान होती है। मेरी यह पुत्री चित्रांगदा जिस पुत्र को जन्म देगी मैं उसे दत्तक पुत्र के रूप में गोद लेकर राज्य का युवराज बनाऊंगा।''

अर्जुन ने महाराज की यह शर्त मान ली और चित्रांगदा से उनका विधिवत विवाह हो गया।

पुत्रोत्पत्ति के पश्चात् अर्जुन ने महाराज चित्रवाहन और चित्रांगदा से विदा ली और तीर्थाटन को निकल पड़े। यहां से अनेक तीर्थों से गुजरते हुए अर्जुन भारद्वाज तीर्थ पहुंचे। यहां ऋषि-मुनि जल में स्नान नहीं करते थे। पूछने पर मालूम पड़ा कि जल में बड़े-बड़े मगर रहते हैं, ये ऋषि-मुनियों को निगल जाते हैं।

अर्जुन ने सौभद्र तीर्थ में स्नान किया। ऋषियों ने बहुत मना किया, लेकिन वह तो अतुल वीर था, श्रेष्ठ धनुर्धारी था, अत: उसने निष्कंटक रूप से स्नान किया। जब मगर ने उनका पैर जकड़ लिया तो वे उसके सहित ही जल से ऊपर आ गए।

उसी समय एक विचित्र घटना घटी। वह मगर तत्क्षण ही एक सुंदरी में रूपांतरित हो गया।

''तुम कौन हो देवी?'' अर्जुन के ऐसा पूछने पर उसने बताया– ''मैं महाराज कुबेर की प्रेयसी कर्म नाम की अप्सरा हूं। एक बार मैं अपनी सखियों सहित कुबेरजी के पास जा रही थी,

रास्ते में एक तपस्वी के तप में हम लोगों ने विघ्न डालना चाहा।

''उस महान आत्मा के मन में हम रूपसियों को देख कभी काम भाव नहीं जागा। उसने क्रोध में हमें शाप दे डाला कि तुम सौ वर्ष तक पानी में मगर बनकर रहो। देवर्षि नारद ने हमें बताया कि महापराक्रमी धनुर्धारी अर्जुन यहां आकर थोड़े ही दिनों में तुम्हारा उद्धार कर देंगे। हम यहां शापवश मगर रूप में वास कर रही थीं। हे देव! आपने मेरा तो उद्धार कर दिया, मेरी सखियों का भी उद्धार कर दें।''

नागकन्या उलूपी के वरदान के कारण अर्जुन को जलचरों से कोई भय तो था ही नहीं, अत: उन्होंने एक-एक करके चारों सखियों का भी उद्धार कर दिया।

इस प्रकार अर्जुन के प्रयत्न से वह तीर्थ बाधाहीन हो गया।

यहां से लौटने पर एक बार अर्जुन फिर से मणिपुर गए। उनकी पत्नी चित्रांगदा से जो पुत्र उत्पन्न हुआ था, उसका नाम बभ्रुवाहन रखा गया। अर्जुन ने वह पुत्र महाराज चित्रवाहन को सौंप दिया।

''लेकिन हे जामाता! इसके पालन-पोषण के लिए इसकी मां, मेरी पुत्री और तुम्हारी पत्नी चित्रांगदा का यहां रहना तो अत्यंत आवश्यक है, बिना मां के यह पुत्र किस प्रकार पालित होगा?''

यह सुनकर अर्जुन ने कहा– ''अच्छा! ऐसा ही सही, पर आप हमारे यहां इंद्रप्रस्थ में राजसूय यज्ञ में चित्रांगदा को साथ ले आएंगे।''

यह शर्त चित्रवाहन ने स्वीकार कर ली और अर्जुन वहां से भावभीनी विदाई लेकर, भ्रमण करते हुए गौकर्ण तीर्थ में पहुंच गए।

वन में घूमते हुए अर्जुन जब प्रभास क्षेत्र पहुंचे तो वहां उनके आने का समाचार कृष्ण को मिला। अर्जुन से मिलने की इच्छा से कृष्ण स्वयं चलकर प्रभास तीर्थ पहुंचे।

यहां से रैवटक पर्वत होते हुए दोनों मित्र द्वारिका आ गए। यदुवंशियों ने बड़े उत्साह से अर्जुन का स्वागत किया। यहां अर्जुन भगवान कृष्ण के निजी मंदिर में ठहरे। रैवटक पर्वत पर यदुवंशियों, वृष्णि तथा भोजवंशियों ने एक बड़ा उत्सव मनाया। कृष्ण तथा अर्जुन भी उसमें उपस्थित हुए। ये लोग बड़े प्रेम से वहां भ्रमण कर रहे थे। वहीं अर्जुन ने कृष्ण की बहन सुभद्रा को देखा। सुभद्रा की रूप राशि देखकर अर्जुन मोहित हो गए। भगवान कृष्ण अर्जुन के इन भावों को ताड़ गए।

कृष्ण ने अर्जुन के अभिप्राय को जानकर कहा– ''क्षत्रियों के यहां स्वयंवर की रीति होती है परंतु यह निश्चित नहीं कि सुभद्रा तुम्हें वरेगी भी या नहीं। सबकी रुचि अलग-अलग है। क्षत्रियों में बलपूर्वक भी ब्याह करने की रीति है। तुम्हारे लिए अपने मनोभावों को पूरा करने के लिए यही एक सुलभ उपाय है।''

कृष्ण का यह परामर्श पाकर अर्जुन ने एक गुप्त दूत महाराज युधिष्ठिर के पास भेजा। युधिष्ठिर ने यह प्रस्ताव बड़ी प्रसन्नतापूर्वक अनुमोदित कर दिया। दूत के लौटने पर अर्जुन को कृष्ण ने वैसी ही सलाह दी।

संयोग से रैवटक पर्वत पर सुभद्रा देवपूजा के लिए आई। उसने पर्वत की प्रदक्षिणा की, ब्राह्मणों ने मंगल वाचन किया। जब सुभद्रा की सवारी द्वारिका के लिए रवाना हुई तो अवसर पाकर अर्जुन ने बलपूर्वक उसे अपने रथ में बैठा लिया और अपने नगर की ओर चल दिया।

द्वारिका के सैनिकों ने सुभद्रा हरण का यह दृश्य देखा तो वे चिल्लाते हुए द्वारिका की सुधर्मा सभा में पहुंचे। सैनिकों ने अपने आश्चर्य और सुभद्रा हरण का सारा वृत्तांत कह सुनाया।

यह सुनकर यादवों की आंखें चढ़ गईं। युद्ध की टंकार बज गई लेकिन इस युद्ध और आवेश के शोर में श्रीकृष्ण की चुप्पी देखकर बलराम को संदेह हुआ। वह बोले– ''यदुवंशियों! कृष्ण की बात सुने बिना, तुम इतने उतावले क्यों हो?''

''हे वासुदेव! तुम्हारा मित्र समझकर ही हमने उसकी इतनी आवभगत, स्वागत-सत्कार किया लेकिन उसने जिस थाली में खाया उसी में छेद किया।''

''कहने को हमारी बुआ का लड़का है, होनहार है, उत्तम कुल का है, उसके साथ संबंध में हमें कोई आपत्ति नहीं, किन्तु यह उसका तरीका तो सरासर अपमानजनक है। ऐसा करके उसने हमें अनावृत किया है। वह हमारे माथे पर पैर रखकर आगे बढ़ा है कृष्ण! मैं यह नहीं सह सकता, कदापि नहीं सह सकता। तुम जानते हो, मैं अकेला ही कुरुवंशियों के लिए काफी हूं। मैं अर्जुन की यह ढिठाई कभी क्षमा नहीं कर सकता।''

बलराम की इन बातों का यदुवंशियों ने पूर्ण हृदय से समर्थन किया।

बलराम को इस प्रकार क्रोध में देखकर कृष्ण ने कहा– ''दाऊ! अर्जुन ने हमारा और हमारे वंश का अपमान नहीं बल्कि सम्मान किया है। हमारे वंश की महत्ता समझकर ही हमारी बहन का हरण किया है। अर्जुन को संदेह था कि स्वयंवर में सुभद्रा उसका वरण करेगी या नहीं। अत: यह उसका कर्म क्षत्रिय धर्म के अनुरूप है।

देखो दाऊ! क्या तुम नहीं मानते कि अर्जुन और सुभद्रा की जोड़ी कितनी अच्छी लगेगी। और फिर महात्मा भरत के वंशधर और कुंतिभोज के दौहित्र को अपनी कन्या प्रदान कर यह नाता जोड़ना किसे पसंद नहीं होगा? अर्जुन को जीतना भी भगवान शंकर के अलावा और किसी के लिए दुष्कर है। वह इस समय मेरे रथ पर सवार है दाऊ! मैं समझता हूं इस समय युद्ध का उद्घोष न करके अर्जुन के पास जाकर मित्र भाव से उसे कन्या सौंप देनी चाहिए। कहीं अर्जुन ने अकेले ही तुम सब यदुवंशियों को जीत लिया और सुभद्रा को हस्तिनापुर ले गया तो हमारे कुल की बड़ी बदनामी होगी लेकिन यदि मित्रता कर ली जाए तो इसमें हमारा यश बढ़ेगा ही।''

सभी ने कृष्ण की यह बात मान ली। दाऊ कृष्ण की चतुराई समझ गए और खीझ कर रह गए। सम्मान के साथ अर्जुन को लौटा लाए।

द्वारिका में सुभद्रा के साथ अर्जुन का विधिपूर्वक विवाह संपन्न हुआ। विवाह पश्चात् अर्जुन एक वर्ष तक द्वारिका में रहे। अपना वनवास का शेष समय पुष्कर तीर्थ में व्यतीत किया।

बारह वर्ष पूर्ण होने पर अर्जुन सुभद्रा सहित इंद्रप्रस्थ लौट आए।

खाण्डव वन का दहन

एक दिन अर्जुन की प्रेरणा से भगवान श्रीकृष्ण धर्मराज युधिष्ठिर की आज्ञा लेकर यमुना के किनारे जल विहार करने के लिए गए। वहां विहार भूमि पहले ही सजा दी गई थी। उस प्रदेश और विश्राम भवन में सभी साधन थे। भगवान कृष्ण और अर्जुन ने वहां काफी आदरपूर्वक विहार किया, दोनों को अति सुख मिला।

अपने कक्ष में दोनों मित्र बहुमूल्य आसनों पर बैठे थे। तभी वहां एक लंबे डीलडौल के ब्राह्मण उपस्थित हुए। उनका शरीर तपे स्वर्ण के समान चमक रहा था। सिर पर भिनेष वर्ण की जटाएं, मुंह पर श्वेत दाढ़ी, शरीर पर वल्कल वस्त्र थे। इस तेजस्वी ब्राह्मण को देखकर दोनों मित्र स्वागतभाव में खड़े हो गए।

ब्राह्मण ने उन्हें आशीर्वाद देते हुए कहा– ''आप नर और नारायण विश्व के श्रेष्ठ महापुरुष और वीर हैं। मैं एक बहुयोगी ब्राह्मण हूं। इस समय मैं इस खाण्डव वन में आपके सामने भोजन की भिक्षा मांगने आया हूं।''

श्रीकृष्ण ने यह सुनकर कहा– ''आपकी तृप्ति किस प्रकार के अन्न से होगी, आज्ञा करें। हम उसी के लिए प्रयत्न करें।''

ब्राह्मण ने कहा– ''मैं अग्नि हूं, मुझे साधारण अन्न की आवश्यकता नहीं, आप मुझे वही अन्न दें जो मेरे योग्य है। मैं इस खाण्डव वन को जला डालना चाहता हूं। परंतु इस वन में तक्षक नाम का महा विषधर नाग अपने परिवार और मित्रों के साथ रहता है। उस पर इंद्र की कृपा है। वह इस वन की रक्षा करता है। जब-जब मैं इस वन को जलाने की चेष्टा करता हूं, तब-तब वह मुझ पर जल वर्षा करके मेरी लालसा को पूरा होने में व्यवधान कर देता है। आप दोनों अस्त्र विद्या के पारंगत एवं पारदर्शी हैं, इसलिए आपकी सहायता से मेरी यह लालसा पूर्ण हो सकती है। मैं आपसे इसी भोजन की याचना करने आपके समक्ष उपस्थित हुआ हूं।''

अर्जुन के मन में यह प्रश्न उठा कि यह ब्राह्मण वेशधारी अग्निदेव इंद्र के द्वारा सुरक्षित खाण्डव वन को क्यों जलाना चाहते हैं। कृष्ण ने उन्हें संकेत से बताया– ''हे पार्थ! पुराने समय की बात है। एक बड़ा ही शक्तिशाली और पराक्रमी श्वेतकी नाम का राजा था। उन दिनों उसके समान दूसरा कोई भी राजा इतना बड़ा यज्ञ प्रेमी और दानवीर दाता नहीं था। उस राजा श्वेतकी ने बड़े-बड़े यज्ञ किए। इसमें यज्ञ कराने वाले ब्राह्मण भी थक जाते थे। कभी-कभी तो वे उसके यज्ञ में ब्रह्मा पद को अस्वीकार भी करके चले जाते थे किन्तु राजा धर्मव्रती था। उसका यज्ञ चलता ही रहता था। वह किसी-न-किसी प्रकार से अनुनय-विनय करके, दान-दक्षिणा से तुष्ट करके ब्राह्मणों को प्रसन्न कर देता था। अंत में जब राजा श्वेतकी की यज्ञ की अभिलाषा पूर्ण नहीं हुई और सभी ब्राह्मण यज्ञ कराते-कराते हार गए, तब राजा ने तपस्या का व्रत लिया। कठोर तप करके राजा श्वेतकी ने भगवान महादेव की आराधना की और उन्हें प्रसन्न किया। शंकर भगवान की आज्ञा से ही उस राजा ने दुर्वासा मुनि के द्वारा अपना यज्ञ संपन्न कराया। प्रथम द्वादश वर्ष तथा फिर शतवार्षिक महायज्ञ दक्षिणा दे-देकर राजा श्वेतकी ने ब्राह्मणों को पूरी तरह संतुष्ट कर दिया। मुनि दुर्वासा प्रसन्न हुए। राजा श्वेतकी अपने परिवार के सदस्यों तथा ऋत्विजों के साथ स्वर्ग सिधार गए। उनके यज्ञ में बारह वर्ष तक अग्निदेव ने घी की अखण्ड धाराएं दी थीं। इससे अग्निदेव की पाचन शक्ति क्षीण हो गई, रंग फीका पड़ गया और प्रकाश मंद हो गया। जब अजीर्ण के कारण उनका अंग-अंग ढीला पड़ गया तब उन्होंने ब्रह्माजी के पास जाकर प्रार्थना की– ब्रह्मा ने अग्निदेव की यह समस्या सुनकर कहा– ''अग्निदेव! यदि तुम खाण्डव वन को जला दो, तुम्हारी अरुचि और अजीर्ण दूर हो जाएगा, इससे तुम्हारी ग्लानि भी मिट जाएगी। अब तक अग्निदेव सात बार खाण्डव वन को जलाने की चेष्टा कर चुके हैं परंतु इंद्र के संरक्षण के कारण ये अपने इस प्रयत्न में सफल नहीं हो पाए। यह असफलता अग्निदेव को और अधिक त्रस्त कर गई। अग्निदेव पुन: ब्रह्माजी की शरण में गए। तब ब्रह्मा ने ही उन्हें यह उपाय बताया। हे अर्जुन! यह ब्राह्मण वेशधारी अग्निदेव! ब्रह्माजी के द्वारा बताए उपाय के लिए ही यहां तुम्हारे पास आए हैं, तुम्हें इनकी सहायता करनी है।''

कृष्ण से यह जानकर अर्जुन ने कहा– ''हे अग्निदेव! मेरे पास दिव्यास्त्रों की कमी नहीं है, उनके द्वारा युद्ध में मैं साक्षात देवराज इंद्र को भी छका सकता हूं, मगर मेरे बाहुबल को संभाल सकने वाला धनुष मेरे पास नहीं है और न ही उन अस्त्रों के उपयुक्त बाण ही हैं। रथ भी ऐसा नहीं है जो यथेष्ट बाणों का बोझ ढो सके। हे देव! स्वयं श्रीकृष्ण के पास भी इस समय ऐसा कोई शस्त्र नहीं है, जिससे ये युद्ध में नागों तथा पिशाचों को मार सकें।

''खाण्डव वन जलाते समय इंद्र को रोकने के लिए युद्ध सामग्री की आवश्यकता है। बल तथा कौशल तो हमारे पास है, सामग्री का प्रबंध यदि आप कर सकें तो हम आपकी सहायता अवश्य करने का वचन देते हैं।''

अर्जुन की समयोचित बात सुनकर अग्निदेव ने जलाधिपति स्वामी और लोकपाल वरुण का स्मरण किया, तुरंत ही वरुणदेव उनके सम्मान में प्रकट हो गए।

वरुण को समक्ष देखकर अग्नि ने उनसे कहा– ''हे वरुणदेव! आपको राजा सोम ने अक्षय तरकश, गाण्डीव धनुष और वानर चिह्नयुक्त ध्वजा से मंडित दिव्य रथ दिया है, वह शीघ्र मुझे दें और चक्र भी दें। श्रीकृष्ण और अर्जुन, चक्र तथा गाण्डीव धनुष की सहायता से मेरा बड़ा भारी कार्य सिद्ध करेंगे।''

वरुण ने अग्निदेव की प्रार्थना स्वीकार करते हुए ये सभी आयुध उन्हें तत्काल भेंट कर दिए। गाण्डीव की महिमा अद्भुत है, वह किसी भी शस्त्र से कट नहीं सकता तथा सभी शस्त्रों को काट सकता है। वह अकेला ही सब प्रकार की सामर्थ्य वाला है।

यह सब पाकर अर्जुन के आनंद की सीमा न रही। जिस समय अर्जुन ने उस दिव्य रथ पर सवार होकर धनुष को झुकाया और उस पर डोरी चढ़ाई तो उस गंभीर ध्वनि को सुनकर सुनने वालों के कलेजे कांप उठे। अर्जुन समझ गए कि अब वे अग्नि की पूरी सहायता कर सकते हैं।

अग्निदेव ने भगवान कृष्ण को दिव्य चक्र तथा अग्नेय अस्त्र देते हुए कहा– ''मधुसूदन! इस चक्र के द्वारा आप जिसे चाहेंगे मार डालेंगे। इस चक्र के प्रभाव के सामने समस्त देवता, दानव,

राक्षस, पिशाच, नाग और मनुष्यों की शक्ति कुछ भी नहीं है। यह चक्र ऐसा करामाती है, हर बार चलाने पर शत्रु का नाश करके फिर वापस लौट आता है।''

वरुणदेव ने भगवान श्रीकृष्ण की सेवा में दैत्यनाशिनी एवं वज्रध्वनि के समान शब्द से शत्रुओं का दिल दहला देने वाली कौमोद की गदा भी अर्पित की। अब इस प्रकार शस्त्रों से सज्जित होकर अर्जुन तथा कृष्ण ने अग्निदेव की भूख मिटाने का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया और उन्हें खाण्डव वन जलाने की अनुमति दे दी।

भगवान कृष्ण और अर्जुन से अनुमति पाकर अग्निदेव ने तेजोमय दावानल का प्रदीप्त रूप धारण कर लिया और अपनी सातों ज्वालाओं से खाण्डव वन को घेरकर प्रलय का-सा दृश्य उपस्थित करते हुए उसे भस्मसात करना प्रारंभ किया।

उस वन में वास करने वाले प्राणियों ने जब इस प्रकार स्वयं को अग्नि के घेरे में फंसा पाया तो वे चिल्लाते-चिंघाड़ते त्राहि-त्राहि करते हुए भागने लगे।

खाण्डव वन की आग इस प्रकार प्रचण्ड होकर दहकने और भड़कने लगी कि उसकी विशालकाय लपटें आसमान छूने लगीं। देवता यह दृश्य देखकर कांपने लगे। आग की गर्मी से संतप्त होकर सभी देवगण देवराज इंद्र के समक्ष गए।

''हे देवराज! इस भीषण गर्मी से हमारी मदद करें। यदि यह नहीं रुकी तो समझिए समस्त प्राणियों का संहार हो जाएगा। क्या प्रलय का समय आ गया है?''

देवों की इस घबराहट और प्रार्थना से प्रभावित होकर तथा अग्नि की यह भयानक करतूत देखकर स्वयं इंद्र खाण्डव वन को अग्नि से बचाने के लिए तैयार हो गए।

इंद्र ने बादलों को आज्ञा दी कि चारों ओर से खाण्डव वन को घेर लिया जाए और जलवृष्टि से अग्नि के इस दुष्प्रयोजन को बंद कर दिया जाए। बादल से जल की मोटी-मोटी धाराएं फूट निकलीं।

अर्जुन ने जब बादलों से भयानक जलवर्षा होती देखी तो अपने अस्त्र बल से बाणों के द्वारा जल की वह बौछार रोक दी। सारा आकाश बाणों से ऐसा घिर गया कि कोई भी प्राणी उससे निकलकर बाहर न जा सका। उस समय नागराज तक्षक खाण्डव वन में नहीं था। वह कुरुक्षेत्र चला गया था, लेकिन उसका पुत्र अश्वसेन वहीं था।

अश्वसेन ने बचने की लाख कोशिशें कीं लेकिन वह अर्जुन के बाणों के घेरे से बाहर जाने में सफल नहीं हो पा रहा था।

अश्वसेन की माता ने उसे निकालकर बचाने का प्रयास किया, लेकिन वह उसे मुंह से पूंछ तक निगलने पर भी अग्नि के प्रकोप से बीच में ही भाग खड़ी हुई। अर्जुन ने ऐसा ताक कर निशाना साधा कि उसका फन बिंध गया।

इंद्र आकाश मार्ग से ही अर्जुन का यह कौशल देख रहे थे। उन्होंने अश्वसेन को बचाने के लिए ऐसी आंधी चलाई और बूंदों की वर्षा की कि अर्जुन क्षण-भर के लिए मोहित हो गए। अश्वसेन वहां से निकल भागा। इंद्र के इस धोखे को देखकर अर्जुन क्रोध से तिलमिला उठे। अब अर्जुन अपने पैने और तेज बाणों से आकाश को ढककर इंद्र से भिड़ गए।

दोनों में शक्ति परीक्षण का भयंकर दौर चलने लगा। अर्जुन के इस कौशल को देखकर इंद्र क्रोध में आ गए और ऐरावत पर चढ़कर कृष्ण और अर्जुन की ओर दौड़ पड़े। उन्होंने जल्दबाजी में अपने वज्र का प्रयोग कर दिया। चिल्लाकर देवों ने कहा– ''देखो अभी दोनों समाप्त होते हैं।''

यह सुनकर सभी देवों ने अपने-अपने अस्त्र उठा लिए। यह देखकर कृष्ण और अर्जुन ने भी अपने धनुष चढ़ाकर निर्भयता से सामना किया। इन दोनों के बाण प्रहार के सामने इंद्रादि देवों की एक भी चाल सफल न हो सकी।

असफल इंद्र ने मंदराचल पर्वत की एक शारक ही उठाकर अर्जुन की ओर फेंक दी, परंतु अर्जुन के दिव्य बाणों ने उसे भी धूल की तरह हवा में उड़ा दिया।

उधर कृष्ण के चक्र और अर्जुन के दिव्य बाणों की चोट से जीव-जन्तु जलकर स्वाहा हो रहे थे। श्रीकृष्ण मानो उस समय अपने काल रूप में आ गए थे।

तभी इंद्र को संबोधित करते हुए एक आकाशवाणी हुई। हे इंद्र! तुम्हारा मित्र तक्षक कुरुक्षेत्र जाने के कारण इस अग्निकांड की चपेट में आने से बच गया है, वह जला नहीं है। तुम अर्जुन और कृष्ण को इस युद्ध में किसी भी प्रकार से जीत नहीं सकते। तुम्हें यह जान लेना चाहिए, ये दोनों ही तुम्हारे चिर-परिचित नर-नारायण हैं। इनकी शक्ति और पराक्रम असीम है। ये दोनों अजेय हैं। सभी के लिए पूजनीय हैं। तुम देवताओं को लेकर यहां से चले जाओ। इसी में तुम्हारी शोभा है, इसी में देवत्व की गरिमा भी है। खाण्डव वन का यह वन दैव के द्वारा ही रचा गया है।

आकाशवाणी सुनकर देवराज इंद्र ने अपने हथियार वापस कर लिए, बादलों को वापस लौटा दिया। क्रोध और ईर्ष्या का त्याग कर इंद्र अपने लोक को लौट गए।

देवराज इंद्र को देवों सहित पीछे हटता देख अर्जुन और कृष्ण ने हर्ष-ध्वनि की। खाण्डव वन किसी अनाथ के घर की तरह धक-धक जलने लगा। श्रीकृष्ण ने तभी देखा कि मयदानव तक्षक के निवास स्थान से निकलकर भागा जा रहा है और अग्निदेव उसे जलाने के लिए उसका पीछा कर रहे हैं।

कृष्ण ने यह देखकर मयदानव को मारने के लिए अपना चक्र उठाया। यह देखकर वह दानव पहले तो भौंचक्का रह गया, फिर सोचते हुए पुकारा– ''वीर अर्जुन मैं तुम्हारी शरण में हूं। केवल तुम ही मेरी रक्षा कर सकते हो।''

अर्जुन ने उसे शरणागत आया देखकर कहा– ''डरो मत!''

कृष्ण ने जब अर्जुन को अभयदान करते देखा तो अपना चक्र रोक लिया। अग्नि ने भी उसे भस्म नहीं किया। पंद्रह दिन तक खाण्डव वन जलता रहा। इसमें केवल छः प्राणी ही बच सके– अश्वसेन, मयदानव, और चार पक्षी।

इसके पश्चात् अग्निदेव ब्राह्मण वेश में कृष्ण और अर्जुन के सम्मुख विनम्र भाव से खड़े हो गए और तभी देवराज इंद्र भी देवगणों के साथ वहां पधार गए।

उन्होंने कृष्ण और अर्जुन से कहा– ''आप लोगों ने यह ऐसा दुष्कर कार्य किया जो देवगणों के लिए भी असाध्य था। मैं आप लोगों पर प्रसन्न हूं, इसलिए आप मनुष्यों के लिए दुर्लभ-से-दुर्लभ वस्तु भी मुझसे मांग सकते हो।''

यह सुनकर अर्जुन ने कहा– ''आप मुझे सब प्रकार के अस्त्र दे दीजिए।''

अर्जुन की अभिलाषा देखकर इंद्र ने कहा– ''जिस समय देवों के भी देव महादेव तुम पर प्रसन्न होंगे, उस समय तुम्हारे तप के प्रभाव से मैं तुम्हें अपने सारे अस्त्र दे दूंगा। हे अर्जुन! मैं यह भी जानता हूं कि वह समय कब आएगा।''

देवराज को संबोधित करते हुए कृष्ण ने कहा– ''देवराज! आप मुझे यह वर दीजिए कि मेरी और अर्जुन की मित्रता क्षण-प्रतिक्षण बढ़ती ही जाए, कभी क्षीण न हो, न टूटे।''

इंद्र ने मुस्कराकर कहा– ''देवश्रेष्ठ! आप स्वयं नारायण हैं, मैं तो आपका ही अनुचर हूं। आप जिस पर चाहें अपनी कृपादृष्टि कर सकते हैं। अर्जुन भी आपका एक भक्त ही है। आपने मुझे बड़प्पन दिया, यह मेरा सौभाग्य है। इस मनुष्य लोक में आप जिस उद्देश्य से आए हैं, वह अवश्य ही पूरा होगा। हम सभी की यही कामना है। आप नारायण हैं, अर्जुन नर हैं। आपका साथ सदैव बना रहेगा।'' यह कहकर देवराज इंद्र प्रसन्नचित्त लौट गए।

अग्निदेव भी अपनी चिरक्षुधा को मिटाकर आशीर्वाद देते हुए अपने लोक को लौट गए। खाण्डव वन अब एक समतल भूमि होकर रह गया था।

मयदानव दानवों का विश्वकर्मा था। उसने कृष्ण को प्रसन्न करने के लिए–महाराज युधिष्ठिर के लिए एक अलौकिक सौंदर्य वाली सभा का निर्माण किया। यह सभा कैलाश पर्वत के उत्तर

में मैनाक पर्वत पर विन्दुसर के समीप स्थापित हुई। यहीं आगे चलकर युधिष्ठिर ने राजसूय यज्ञ संपन्न किया था।

अर्जुन की दिग्विजय

युधिष्ठिर की आज्ञा प्राप्त करके चारों भाइयों ने दिग्विजय यात्रा की। अर्जुन ने उत्तर दिशा की विजय का भार लिया था। उन्होंने पहले साधारण पराक्रम से ही आनर्त, कालकूट और कुलिंद देशों पर विजय प्राप्त करके सेना सहित सुमण्डल को जीत लिया। सुमण्डल को साथी बनाकर शाकल द्वीप और प्रतिबिंध्य पर्वत के राजाओं पर विजय प्राप्त की। सात द्वीप के राजाओं में से शाकल द्वीप वालों ने बड़ा ही घमासान युद्ध किया, परंतु अर्जुन के बाणों के सामने उन्हें हारना पड़ा। उनकी सहायता से अर्जुन ने प्राग्ज्योतिषपुर पर चढ़ाई की। वहां का राजा भगदत्त बड़ा ही प्रतापी था, किरात, चीन आदि बहुत से समुद्री देशों के राजा उसके सहायक थे। आठ दिन तक भयंकर युद्ध होने के बाद भी अर्जुन का उत्साह देखकर भगदत्त ने कहा– ''महाबाहु अर्जुन! तुम्हारा पराक्रम तुम्हारे ही योग्य है। तुम देवराज इंद्र के पुत्र हो ना। इंद्र से मेरी मित्रता है और मैं उनसे कम वीर नहीं हूं, इसलिए मैं तुमसे युद्ध नहीं कर सकता।''

भगदत्त के यह पूछने पर कि– ''तुम्हारी इच्छा क्या है? मैं उसे अवश्य ही पूरा करूंगा।'' अर्जुन ने उनसे कहा– ''हे राजन! कुरुवंश शिरोमणि धर्मराज युधिष्ठिर राजसूय यज्ञ करना चाहते हैं। मेरी भी इच्छा है कि वे चक्रवर्ती सम्राट हों। आप मेरे पिता इंद्र के मित्र हैं और हमारे हितैषी भी हैं। अत: मैं आपको आज्ञा तो नहीं दे सकता, आप प्रेमभाव से ही उन्हें भेंट दीजिए।''

भगदत्त ने अर्जुन से कहा– ''तुम्हारे ही समान युधिष्ठिर भी मुझे प्रिय हैं, इसलिए जैसा तुम कहते हो, मैं वैसा ही करूंगा।''

अर्जुन ने कुबेर के द्वारा सुरक्षित उत्तर दिशा में बढ़कर पर्वतों के भीतर-बाहर और आस-पास के सब स्थानों पर अधिकार जमा लिया। उलूक देश के राजा बृहंत ने घोर युद्ध किया और अंत में हार मानकर अर्जुन की शरण में आया। अर्जुन ने बृहंत का राज्य उसी को सौंपकर उसकी सहायता से सेनाविन्दु के देश पर धावा बोलकर उसे भी अपने अधिकार में कर लिया। मोदापुर, वामदेव, सुदामा, सुसंकुल और उत्तर उलूक देशों के राजाओं को अपने वश में करके पंचगणों

को भी अपने वश में कर लिया। अर्जुन ने पौरव राजा, कश्मीर के वीर राजा लोहित, त्रिगर्त, दारु, कोकनद के राजा, उरग देश के राजा रोचमान आदि को हराया और दरद, कम्बोज तथा ऋषिक देशों को अपने अधीन किया। ऋषिक देश में तोते के समान हरे रंग वाले आठ घोड़े लिए। निकूट और पूरे हिमालय पर विजय पताका फहराकर धवलगिरी पर अपनी सेना का पड़ाव डाला।

अर्जुन सभी देशों के राजाओं को हराकर मानसरोवर पहुंचे, जहां उन्हें ऋषियों के विचित्र आश्रमों के दर्शन हुए। वहीं से हाटक देश के आस-पास बसे प्रांतों पर भी अधिकार कर लिया। उसके बाद अर्जुन ने उत्तरी हरिवर्ष पर विजय प्राप्त करनी चाही।

जब अर्जुन हरिवर्ष पहुंचे तो बड़े-बड़े द्वारपालों ने उनका स्वागत किया, वे यह समझ रहे थे कि यह कोई असाधारण पुरुष है। उन्होंने अर्जुन से कहा कि आप यहां आ गए, यही हमारी विजय है। यहां की कोई भी वस्तु मनुष्य शरीर से नहीं देखी जा सकती, इसलिए दिग्विजय की कोई बात ही नहीं है। हम तो बहुत प्रसन्न हैं। आपको कोई काम हो तो बताइए। तब अर्जुन ने कहा– ''मैं अपने बड़े भाई धर्मराज युधिष्ठिर के चक्रवर्ती सम्राट बनने के लिए दिग्विजय कर रहा हूं। यदि तुम्हारे इस देश में मनुष्यों का आना निषिद्ध है तो मैं इसमें नहीं घुसूंगा, तुम लोग केवल कुछ कर दे दो।''

हरिवर्ष के लोगों ने अर्जुन को कर रूप में अनेक दिव्य वस्त्र, दिव्य आभूषण और मृगचर्म आदि दिए। इस प्रकार उत्तर दिशा पर विजय प्राप्त करके अर्जुन अपनी महान सेना के साथ इंद्रप्रस्थ लौट आए और सारा धन तथा वाहन धर्मराज युधिष्ठिर को सौंप दिए।

राजसूय यज्ञ में धर्मराज का दर्शन करके अपना सौभाग्य मानने वाले जितने भी लोग वहां उपस्थित हुए थे, उनमें से किसी ने भी सहस्र मुद्रा से कम की भेंट नहीं दी थी। सब लोग यही चाहते थे कि मेरे ही धन से यह यज्ञ का कार्य पूरा हो जाए। सेना के व्यूह, अनेक प्रकार के

विमानों की पंक्तियां, रत्नों की राशि, ब्राह्मणों के स्थान और राजाओं की भीड़ से राजसूय यज्ञ की शोभा बहुत ही बढ़ गई थी।

युधिष्ठिर ने यज्ञ में छः अग्नियों की स्थापना करके पूरी-पूरी दक्षिणा देकर यज्ञ के द्वारा भगवान का भजन किया। सभी अतिथियों का पूरा सम्मान किया और मुंहमांगी वस्तुएं भेंट स्वरूप प्रदान कीं। सभी के खाना खाने के बाद भी बहुत-सी वस्तुएं बची रहीं। महर्षि और मंत्र कुशल ब्राह्मणों ने उत्तम रीति से घी, तिल आदि की आहुति देकर देवताओं को भी तृप्त कर दिया। सभी ब्राह्मणों का भी यथोचित सत्कार किया गया।

सभी ओर युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ की धूम मची हुई थी, हीरे-मोतियों के उपहार दिए जा रहे थे। इस यज्ञ में ब्राह्मण भी बहुत-सा धन पाकर पूर्ण रूप से संतुष्ट हो गए थे।

अर्जुन की तपस्या तथा दिव्यास्त्रों की प्राप्ति

वेदव्यासजी ने युधिष्ठिर से कहा– ''हे प्रिय वत्स! मैं तुम्हारे हृदय की सब बात जानता हूं, इसलिए तुम्हारे पास आया हूं। तुम्हारे मन में भीष्म, कर्ण, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, अश्वत्थामा और दुर्योधन का जो भी डर है, उसका मैं शास्त्र की रीति के अनुसार विनाश करूंगा। तुम मेरे कहे अनुसार कार्य करो।''

युधिष्ठिर को समझाते हुए व्यासजी ने कहा– ''मैं तुम्हें मूर्तिमान सिद्धि के समान प्रतिस्मृति नाम की विद्या देता हूं, तुम यह विद्या अर्जुन को सिखा देना। इस विद्या के बल से वह तुम्हारा राज्य शत्रुओं से छीन लेगा। अर्जुन तपस्या तथा पराक्रम के द्वारा देवताओं के दर्शन की योग्यता रखता है। अर्जुन तो नारायण का सहचर महातपस्वी नर है, इसे तो कोई नहीं जीत सकता। अत: तुम इस अस्त्र विद्या प्राप्त करने के लिए भगवान शंकर, देवराज इंद्र, अरुण, कुबेर और धर्मराज के पास भेजो। यह उनसे अस्त्र विद्या प्राप्त करके बड़ा पराक्रम का काम करेगा।'' वेदव्यासजी ने कहा– ''तुम लोगों को भी अब यहां से कहीं और चले जाना चाहिए, क्योंकि तपस्वियों को अधिक समय तक एक स्थान पर नहीं रहना चाहिए।'' ऐसा कहते हुए वेदव्यासजी ने युधिष्ठिर को प्रतिस्मृति विद्या का उपदेश दिया और वहां से चले गए ।

इस विद्या को प्राप्त कर लेने से युधिष्ठिर को बहुत प्रसन्नता हुई और वेदव्यासजी के कहे अनुसार मंत्र का मनन और जाप करने लगे। द्वैतवन से वे अब काम्यक वन में आ गए थे। उनके आने के पश्चात् सभी वेदज्ञ और तपस्वी भी वहां आ गए थे। सभी पाण्डव वहां रहकर पितर, ब्राह्मण और देवताओं को संतुष्ट करने लगे।

एक दिन धर्मराज युधिष्ठिर ने अर्जुन को अपने पास बुलाया और कहा– ''अर्जुन! भीष्म, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, कर्ण, अश्वत्थामा, ये सभी शस्त्रों के बहुत बड़े ज्ञाता हैं। दुर्योधन ने तो उन्हें

अपने वश में कर ही लिया है। अब हमें केवल तुमसे ही आशा है। तुम मेरी बात ध्यान से सुनो।''

युधिष्ठिर ने अर्जुन को बताया– ''भगवान वेदव्यासजी ने मुझे एक गुप्त विद्या का उपदेश दिया है। उसका उपयोग करने पर सारा जगत भलीभांति दिखने लगता है। तुम सावधानी से वह विद्या मुझसे सीख लो और समय पर देवताओं का कृपा प्रसाद प्राप्त कर लो। इसके लिए तुम्हें दृढ़ ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करना होगा। धनुष, बाण, कवच और खड्ग लेकर साधुओं का वेश धारण करके उत्तर दिशा की यात्रा करो। वहां पहुंचकर तुम उग्र तपस्या के द्वारा देवताओं की कृपा प्राप्त करना। वृत्तासुर से भयभीत होकर देवताओं ने अपने सभी अस्त्र-शस्त्र का बल इंद्र को सौंप दिया था, तभी से सारे अस्त्र-शस्त्र इंद्र के ही पास हैं। तुम आज ही इस मंत्र की दीक्षा लेकर इंद्र के पास जाओ, वे तुम्हें वे सब अस्त्र दे देंगे।'' धर्मराज युधिष्ठिर ने अर्जुन को शास्त्र विधि के अनुसार व्रत कराकर गुप्त मंत्र सिखा दिया और इंद्रकील जाने की आज्ञा दे दी। अर्जुन ने अपना गाण्डीव धनुष, अक्षय तरकस और कवच उठाकर जाने की तैयारी की।

जब अर्जुन जाने की तैयारी कर रहे थे, तभी द्रौपदी ने पास आकर कहा– ''हे वीर! उस पापी दुर्योधन ने भरी सभा में मुझे अनुचित बातें कहकर मेरा अपमान किया है। उन सबसे मुझे बहुत दु:ख हुआ है, परंतु तुम्हारे वियोग का दु:ख तो उससे भी बड़ा है। हमारे सुख-दु:ख के तो एकमात्र सहारा तुम ही हो, इसलिए मैं तुम्हें जाने की अनुमति देती हूं और भगवान से तुम्हारे कल्याण की कामना करती हूं।'' ऐसा कहते हुए द्रौपदी ने अर्जुन को विदा किया।

परम पराक्रमी अर्जुन जब इंद्र का दर्शन कराने वाली विद्या से युक्त होकर मार्ग में चल रहे थे तो सभी लोग रास्ता छोड़कर दूर हट जाते थे। अर्जुन की चाल इतनी तेज थी कि वे एक ही दिन में पवित्र हिमालय पर पहुंच गए। इसके पश्चात् वे गंधमादन पर्वत पर गए और रात-दिन की यात्रा करके वे इंद्रकील के पास पहुंच गए। जब अर्जुन इंद्रकील पर पहुंचे तो वहां उन्हें एक आवाज सुनाई दी कि खड़े हो जाओ।

जब इधर-उधर देखा तो अर्जुन को एक वृक्ष की छाया में कोई तपस्वी बैठे दिखाई दिए, जो शरीर से तो अत्यंत दुर्बल थे, परंतु वे ब्रह्मतेज से चमक रहे थे। इन तपस्वी को देखकर अर्जुन खड़े हो गए। तपस्वी ने उनसे पूछा– ''तुम धनुष, बाण, कवच, तलवार धारण किए हो, तुम कौन हो और यहां आने का तुम्हारा प्रयोजन क्या है? यहां पर शस्त्रों का कोई काम नहीं है, क्योंकि यहां पर तो शांत स्वभाव वाले तपस्वी रहते हैं, युद्ध यहां नहीं होता। अत: तुम अपने शस्त्र फेंक दो।''

तपस्वी के कई बार कहने पर भी अर्जुन ने अपने शस्त्र नहीं छोड़े। तब उस तपस्वी ने हंसते हुए कहा– ''मैं इंद्र हूं, अर्जुन! तुम्हारी जो भी इच्छा हो मांग लो।''

अर्जुन ने दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम किया और बोले– ''भगवन! मैं आपसे संपूर्ण अस्त्र विद्या सीखना चाहता हूं। आप मुझे यही वर दीजिए।'' तब इंद्र ने कहा– ''अब तुम अस्त्र सीखकर क्या करोगे। इच्छानुसार ऐश्वर्य मांग लो।'' इस पर अर्जुन ने कहा– ''मैं लोभ, काम, देवत्व, सुख तथा ऐश्वर्य के लिए अपने भाइयों को वन में नहीं छोड़ सकता। मैं तो अस्त्र विद्या सीखकर अपने भाइयों के पास लौट जाना चाहता हूं।''

इंद्र ने अर्जुन को समझाया – ''जब तुम्हें भगवान शंकर के दर्शन होंगे, तभी मैं तुम्हें सब दिव्य अस्त्र दे दूंगा। तुम उनके दर्शन करने का प्रयत्न करो। उनके दर्शन करने के पश्चात् ही तुम स्वर्ग में आओगे।'' यह कहकर इंद्र अंतर्धान हो गए।

इसके पश्चात् दृढ़ निश्चयी अर्जुन हिमालय को लांघकर एक बहुत बड़े कंटीले जंगल में पहुंच गए। वहां पर उन्होंने कुश के वस्त्र धारण किए तथा मृगछाला, दण्ड और कमंडल लेकर तपस्या आरंभ कर दी। पहले महीने तो उन्होंने तीन-तीन दिन में पेड़ों से गिरे पत्ते खाए। दूसरे महीने में छ:-छ: दिन के पश्चात् और तीसरे महीने में पंद्रह दिन के पश्चात् वे आहार लेने लगे। चौथे महीने में वे बांह उठाकर पैर के अंगूठे की नोक के बल ही निराधार खड़े हो गए और

केवल हवा पीकर तपस्या करने लगे। नित्य ही वे जल में स्नान किया करते थे जिसके कारण उनकी जटाएं भी पीली पड़ गई थीं।

अर्जुन की इस कठिन तपस्या को देखकर बड़े-बड़े ऋषि-मुनियों ने भगवान शंकर के पास जाकर प्रार्थना की और कहा– ''भगवन! अर्जुन की तपस्या के तेज से दिशाएं धूमिल हो गई हैं।'' तब भगवान शंकर ने कहा– ''आज मैं अर्जुन की इच्छा अवश्य पूरी करूंगा।'' ऋषियों के जाने के पश्चात् भगवान शंकर ने सोने का सा दमकता हुआ भील का रूप धारण किया। सुंदर धनुष, सर्पाकार बाण लेकर वे पार्वती के साथ अर्जुन के पास पहुंचे, बहुत से भूत-प्रेत भी उनके साथ आ गए। जब भील के वेश में शंकर अर्जुन के पास पहुंचे तो उन्होंने देखा कि मूक दानव जंगली सूअर का वेश बनाकर अर्जुन को मार डालने की योजना बना रहा है। अर्जुन ने भी उस शूकर को देख लिया था और गाण्डीव धनुष पर सर्पाकार बाण चढ़ाकर उस मूक दानव से कहा– ''हे दुष्ट! तू मुझ निरपराध को मारना चाहता है। ले मैं तुझे पहले ही यमराज के पास पहुंचा देता हूं।''

अर्जुन ने जैसे ही बाण छोड़ना चाहा, शिवजी ने बीच में आकर उसे रोक दिया और बोले– ''मैं तो इसे मारने का पहले ही निश्चय कर चुका था, इसलिए अब तुम इसे मत मारो।'' शंकर ने भील का रूप धारण किया हुआ था, इसलिए अर्जुन ने उनकी बात पर ध्यान नहीं दिया और बाण चला दिया, ठीक उसी समय शिवजी ने भी अपना वज्र-सा बाण चला दिया, दोनों के बाण उस मूक दानव के शरीर से जाकर टकराए और बड़ी भयंकर आवाज हुई।

जब अर्जुन ने उस भील की ओर देखा तो उससे पूछा– ''तू कौन है, इस मंडली के साथ निर्जन वन में क्यों घूम रहा है? यह शूकर तो मेरा तिरस्कार करने यहां आया था और मैंने तो इसे मारने का निश्चय पहले ही कर लिया था, फिर तूने इसका वध क्यों किया, अब मैं तुझे जीवित नहीं छोडूंगा।'' तब उस भील ने कहा– ''इस पर मैंने तुमसे पहले प्रहार किया था, मेरा विचार भी तुमसे पहले का था और यह मेरे ही निशाने से मरा है। यदि तुम अपने आपको

अधिक बलशाली मानते हो तो मैं बाण चलाता हूं, या तो तुम उसे सहन करो या मुझ पर बाण चलाओ।'' भील की यह बात सुनकर अर्जुन क्रोध से आगबबूला हो गए और भील पर बाणों की वर्षा करने लगे।

अर्जुन के बाण जैसे ही भील के पास आते, वह उन्हें पकड़ लेता। यह देखकर तो अर्जुन को और भी क्रोध आ गया। तब हंसते हुए भगवान शंकर ने कहा– ''अरे मंदबुद्धि खूब मार, कहीं कोई कमी न रह जाए।'' दोनों ओर से बाणों की वर्षा होने लगी, परंतु उस भील का तो बाल भी बांका नहीं हुआ। जब अर्जुन ने यह देखा तो उसे बहुत आश्चर्य हुआ। अर्जुन के सारे बाण समाप्त हो गए थे, तब उसने धनुष की नोक से मारना शुरू कर दिया। भील ने वह धनुष भी छीन लिया। अर्जुन ने तलवार, पत्थर, वृक्ष सभी से प्रहार किया, पर कोई भी सफल न हो सका। अंत में जब अर्जुन ने घूंसा मारा और भील ने घूंसे का जवाब घूंसे से दिया तो अर्जुन के होश गुम हो गए, दम घुटने लगा और वे लहूलुहान होकर भूमि पर गिर पड़े।

जब अर्जुन को होश आया तो उन्होंने मिट्टी की एक वेदी बनाई और उस पर भगवान शंकर की स्थापना की, फिर उनका पूजन करना प्रारंभ कर दिया। अर्जुन ने शंकर की मूर्ति पर पुष्प चढ़ाया तो वह पुष्प उस भील के सिर पर चला गया। यह देखकर अर्जुन के हर्ष की सीमा ही नहीं रही। अर्जुन ने शांत होकर भील के चरणों में प्रणाम किया।

भगवान शंकर ने अर्जुन से प्रसन्न होकर कहा– ''अर्जुन! मैं तुम्हारे अनुपम कर्म से बहुत प्रसन्न हूं। तुम्हारे जैसा शूरवीर और कोई नहीं है। तुम मेरे ही समान बल और तेज वाले हो। तुम मेरे स्वरूप का दर्शन करो। मैं तुम्हें दिव्य ज्ञान देता हूं जिससे तुम देवताओं और शत्रुओं को जीत सकोगे। मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हूं, अत: तुम्हें एक ऐसा अस्त्र बताता हूं जिसका कोई निवारण नहीं कर सकता। इस अस्त्र को धारण करने में तुम्हें एक पल से अधिक नहीं लगेगा।'' अर्जुन को भगवान शंकर और पार्वती ने दर्शन दिए, तब अर्जुन ने उन्हें झुककर प्रणाम किया।

अर्जुन को इस प्रकार अपनी स्तुति करते देख शिव उनकी तपस्या से प्रसन्न हो गए और बोले– ''हे अर्जुन! तुम नारायण के नित्य सहचर नर हो। विष्णु और तुम्हारे परम तेज के आधार पर ही यह जगत टिका हुआ है। इंद्र के अभिषेक के समय तुमने और कृष्ण ने ही दानवों का नाश किया था। आज मैंने माया से भील का रूप धारण करके तुम्हारे अनुरूप गाण्डीव, धनुष और अक्षय तरकस छीन लिया है। अब तुम उन्हें ले लो, तुम्हारा शरीर भी निरोगी हो जाएगा। मैं तुम पर प्रसन्न हूं, जो इच्छा हो वर मांग लो।''

अर्जुन ने इस प्रकार शंकर को प्रसन्न देखकर कहा– ''हे प्रभु! आप यदि मुझे वर देना ही चाहते हैं तो कृपया परम दिव्य पाशुपतास्त्र मुझे प्रदान करें।'' भगवान शंकर ने कहा– ''अर्जुन मैं तुम्हें अपने प्रिय पाशुपतास्त्र देता हूं, किन्तु इतना ध्यान रखना इसे किसी के ऊपर सहसा मत छोड़ देना।''

स्नान, ध्यान करके अर्जुन पवित्रता के साथ भगवान शंकर के समीप आए और उन्हें प्रणाम करते हुए बोले– ''देव! मैं आ गया हूं।''

भगवान शंकर ने अर्जुन को अस्त्र प्रयोग से लेकर उपसंहार तक पाशुपतास्त्र का सारा रहस्य समझा दिया। अब पाशुपतास्त्र मूर्तिमान काल के समान अर्जुन के पास आ गया।

शंकर की आज्ञा से अर्जुन स्वर्ग को प्रस्थान कर गए। अर्जुन के लिए यह बड़ी विलक्षण बात थी, उन्हें शंकर के दर्शन हुए। शंकर ने उनके शरीर पर अपना वरदहस्त फेरा। वह यह सोच ही रहे थे कि तभी देवराज इंद्र अपनी पत्नी इंद्राणी के साथ अर्जुन के पास पधारे। धीरे-धीरे सभी देवता वहां उपस्थित हो गए। धर्मराज ने कहा– ''हे अर्जुन! आज तुम अपने सत्कृत्यों से हम सबके दर्शन के अधिकारी हो गए। तुम मनुष्य रूप में अवतारी पुरुष हो। अब तुम भगवान कृष्ण के साथ रहकर पृथ्वी का भार मिटाओ।'' यह कहते हुए यमराज ने अर्जुन को अपना यमदंड थमा दिया। वरुण ने अर्जुन को वारुणपाश भेंट किया, कुबेर ने अर्जुन को अंतर्धान नामक अनुपम अस्त्र दिया। देवराज इंद्र ने अर्जुन से कहा– ''हे भगवान के नर रूप! मैं भी तुम्हें

दिव्य अस्त्र देता हूं।'' इंद्र के रथ पर सवार होकर अर्जुन मातलि के साथ अमरावती को चल दिए।

जब अप्सराओं और गंधर्वों ने देखा कि अर्जुन स्वर्ग में आ गए हैं तो वे उनकी स्तुति सेवा करने लगे। देवता, गंधर्व, सिद्ध और महर्षि अर्जुन की पूजा में लग गए। अर्जुन ने वहां पर साध्य देवता, विश्वेदेवा, पवन, आदित्य, अश्विनीकुमार, वसु, ब्रह्मर्षि, तुम्बुरु, राजर्षि, नारद तथा हाहा-हूहू आदि गंधर्वों के दर्शन किए। वे सभी अर्जुन का स्वागत करने के लिए ही बैठे थे। आगे जाने पर अर्जुन को देवराज इंद्र के दर्शन हुए। इंद्र को देखकर अर्जुन रथ से उतरकर आए और उन्हें झुककर प्रणाम किया। इंद्र ने अर्जुन को उठाकर देवासन पर बिठाया। अर्जुन के पैर धुलवाकर आचमन कराया गया। इसके पश्चात् इंद्र अर्जुन को अपने भवन में ले गए।

अर्जुन इंद्र के महल में रहकर अस्त्रों का अभ्यास और उपसंहार करने का अभ्यास करने लगे। उन्होंने इंद्र के प्रिय वज्र का भी अभ्यास किया जो शत्रुघाती था। अचानक ही घटा छा जाने और बिजलियों को चमकाने का भी अभ्यास कर लिया। सभी अस्त्रों और पूर्ण ज्ञान प्राप्त हो जाने के पश्चात् वे अपने भाइयों के पास आना चाहते थे, परंतु इंद्र की आज्ञा न मिलने पर अर्जुन को पांच वर्ष स्वर्ग में ही रहना पड़ा।

एक दिन देवराज इंद्र ने अर्जुन से कहा– ''तुम चित्रसेन से नाचना, गाना सीख लो और जो बाजे पृथ्वी लोक में नहीं हैं, उन्हें भी बजाना सीख लो।'' अर्जुन नाच-गाने में प्रवीण हो गए, पर उन्हें अपनी माता और भाइयों की याद बहुत परेशान करने लगी।

एक दिन इंद्र ने देखा कि अर्जुन एकटक उर्वशी की ओर देख रहा है। उन्होंने चित्रसेन से उर्वशी को अर्जुन के पास भेजने को कहा। उर्वशी ने सुगंधित जल से स्नान किया और सजधज कर वह अर्जुन के पास पहुंची। जब अर्जुन ने द्वारपाल से उर्वशी के आगमन का समाचार सुना तो वे शंकित हो गए। जब उर्वशी अंदर आई तो अर्जुन ने अपनी आंखें बंद कर लीं और बोले– ''हे देवी! मैं तो आपका सेवक हूं, आज्ञा करें।''

अर्जुन ने माता के समान उनसे व्यवहार किया, इस पर उर्वशी क्रोधित हो उठी। उसने अर्जुन को शाप दिया– ''तुम्हें स्त्रियों में नर्तक होकर रहना पड़ेगा और सम्मान होने पर भी तुम नपुंसक के नाम से प्रसिद्धि पाओगे।''

उर्वशी तो क्रोधित होकर अपने निवास स्थान पर चली गई, तब अर्जुन चित्रसेन के पास गए और वह सभी कुछ कह सुनाया, जो उर्वशी ने कहा था। चित्रसेन ने ये सभी बातें इंद्र को बताईं।

इंद्र ने अर्जुन को एकांत में बुलाया और कहा– ''उर्वशी ने जो तुम्हें शाप दिया है, वह तुम्हारे बहुत काम आएगा। जिस समय तुम तेरहवें वर्ष में गुप्तवास करोगे, उस समय तुम नपुंसक के रूप में एक वर्ष तक छिपकर रह सकोगे, उसके पश्चात् तुम्हें पुरुषत्व की प्राप्ति हो जाएगी।'' यह सुनकर अर्जुन बहुत प्रसन्न हुए। अब तो अर्जुन चिंतामुक्त होकर स्वर्ग का आनंद लूटने लगे।

अर्जुन जब स्वर्ग में रह रहे थे तो उसी समय लोमश महर्षि स्वर्ग में आए। जब उन्होंने अर्जुन को इंद्र के आधे आसन पर बैठा देखा तो वे मन-ही-मन सोचने लगे कि यह आसन अर्जुन को कैसे मिल गया। इंद्र ने महर्षि के मन की बात जान ली। उन्होंने ऋषि से कहा– ''यह अर्जुन मनुष्य नहीं है, यह तो नर के रूप में देवता है। इसने तो पृथ्वी पर अवतार लिया है। नर और नारायण दोनों ने किसी कार्यवश ही पृथ्वी पर श्रीकृष्ण और अर्जुन के रूप में अवतार लिया है। इस समय निवातकवच नाम का दैत्य मुझे परेशान कर रहा है, उसे वरदान प्राप्त है इसलिए वह अपने आपको भूल गया है। वैसे तो यह कार्य श्रीकृष्ण की दृष्टिमात्र से ही हो सकता है, परंतु इतने छोटे से काम के लिए उन्हें क्या कष्ट दिया जाए। इस कार्य को तो अर्जुन ही कर सकता है। अब तो ये निवातकवचों का नाश करके ही पृथ्वी लोक पर जायेंगे।''

इंद्र ने महर्षि से कहा– ''आप मनुष्य लोक में जाकर धर्मात्मा युधिष्ठिर से मिलकर उन्हें यह आश्वासन दीजिए कि अर्जुन ने अस्त्र विद्या में कुशलता प्राप्त कर ली है और वह दिव्य नृत्य और गायन में भी कुशल हो गया है। अब आप अपने भाइयों के साथ पवित्र तीर्थों की यात्रा कीजिए, जिससे सारे पाप-ताप नष्ट हो जाएंगे और आप पवित्र होकर राज्य का सुख भोगेंगे। हे

ऋषि! आप तो तपस्वी और समर्थ हैं, इसलिए पृथ्वी पर विचरण करते समय पाण्डवों का ध्यान रखियेगा।'' इंद्र की बात सुनकर लोमश ऋषि काम्यक वन में पाण्डवों के पास गए।

अर्जुन के स्वर्ग में निवास करने का समाचार धृतराष्ट्र को मुनि व्यासजी से मिल गया था। उन्होंने संजय से कहा– ''मेरे पुत्र दुर्योधन की बुद्धि तो मंद है। वह तो सदा ही बुरे कामों और विषय-भोगों में लगा रहता है, वह तो अपनी दुष्टता के कारण राज्य का नाश कर डालेगा। धर्मराज युधिष्ठिर तो बड़े ही धर्मात्मा पुरुष हैं, उन्हें तो अर्जुन जैसा योद्धा और वीर भाई का साथ प्राप्त है। जिस समय अर्जुन अपने पैने बाणों का प्रयोग करेगा, उस समय किसमें इतना साहस है कि उसके सामने ठहर सके।''

संजय ने धृतराष्ट्र से कहा– ''आपने दुर्योधन के लिए जो भी कहा है, वह सत्य ही है। अर्जुन ने तो भगवान शंकर को प्रसन्न करके उनसे दिव्य अस्त्र प्राप्त कर लिए हैं। अर्जुन की शक्ति तो अपार है।''

धृतराष्ट्र ने संजय से कहा– ''पाण्डवों की शक्ति तो बढ़ती ही जा रही है। जिस समय बलराम और श्रीकृष्ण पाण्डवों की सहायता करने के लिए यदुकुल के योद्धाओं को उत्साहित करेंगे, उस समय कौरव पक्ष का कोई भी वीर उनका सामना नहीं कर पायेगा। अर्जुन के धनुष की टंकार और भीमसेन की गदा का वेग सहने वाला हमारे पक्ष में कोई भी नहीं है।'' ऐसा सोचकर धृतराष्ट्र अब परेशान हो गए थे।

अर्जुन अस्त्र प्राप्त करने के बाद इंद्रलोक चले गए और पाण्डव इस बीच काम्यक वन में निवास करते रहे। एक बार चर्चा करते हुए भीम ने युधिष्ठिर से कहा– ''भाईजी! हम लोगों का सब भार अर्जुन पर ही है। वही एकमात्र हमारे प्राणों के आधार हैं। आपकी आज्ञा से ही वह इस समय अस्त्र-शस्त्र सीखने गया हुआ है। हम अर्जुन के बाहुबल पर ही यह समझे हुए हैं कि हम विजयी हैं और पृथ्वी हमारे वश में आ गई है लेकिन यदि कहीं अर्जुन का कोई अनिष्ट हो गया तो हम लोग जीवित नहीं रह पायेंगे।''

''मैं समझता हूं, यदि आप मुझे आज्ञा दें तो मैं आग की तरह भभक कर हस्तिनापुर जाकर दुर्योधन को मार सकता हूं।''

''भीमसेन! अभी इतने जोश की आवश्यकता नहीं है।'' यह कहते हुए युधिष्ठिर ने उसे शांत किया। ''इस तरह यदि हम आवेश में आकर नियम भंग करेंगे तो इसका दोष हमको लगेगा और यह हमारे तप में एक भयानक व्यवधान होगा। अर्जुन को आ जाने दो मेरे भाई! जो देवकृपा से दिव्य अस्त्र प्राप्त कर सकता है, शंकर और इंद्र की जिस पर कृपा है, नारायण जिसके सखा हैं और जो स्वयं साक्षात नर हैं, उसके बारे में तुम इतनी चिंता मत करो। मैं अर्जुन की क्षमता समझता हूं।''

अर्जुन द्वारा गंधमादन पर वापसी और प्रवास कथा

अर्जुन अस्त्र विद्या सीखने के लिए इंद्र के पास गए थे। वे पांच वर्ष तक इंद्र के भवन में रहे और उन्होंने देवराज से अग्नि, वरुण, चंद्रमा और वायु, विष्णु, इंद्र, पशुपतिमहादेव, परमेष्ठी ब्रह्मा, प्रजापति यम धाता, सविता, त्वस्ता और कुबेर आदि देवताओं से अस्त्र-शस्त्र प्राप्त किए। इसके पश्चात् अर्जुन इंद्र से विदा लेकर गंधमादन पर्वत पर लौट आए।

इंद्र के रथ पर बैठे अर्जुन, गंधमादन पर्वत पर उतरे तो उन्हें सबसे पहले धौम्य मुनि मिले। अर्जुन ने उनका अभिवादन किया। इसके बाद युधिष्ठिर और भीम के चरण स्पर्श किए। नकुल और सहदेव से अभिवादन लिया और फिर द्रौपदी से मिलकर उसे धीरज बंधाकर वे भ्राता युधिष्ठिर के पास आकर खड़े हो गए।

भाइयों के इस प्रकार मिलन से सबको अतुल्य प्रसन्नता हुई।

इंद्र के सारथी मातुलि का भव्य स्वागत हुआ और जिस प्रकार एक पिता अपने पुत्रों को आशीर्वाद देता है, उसी प्रकार मातुलि ने भी पाण्डवों को अपना आशीर्वाद दिया और रथ को लेकर देवलोक लौट गए।

अर्जुन ने देवराज इंद्र द्वारा दिए गए अनेक बहुमूल्य आभूषण द्रौपदी को भेंट किए। इसके बाद अपने भाइयों के बीच बैठकर उन्होंने अपने प्रवास की कथा सुनाई।

प्रात:काल अपने सुवर्ण जटित रथ से देवराज इंद्र गंधमादन पर्वत पर पाण्डवों के दर्शन हेतु उतरे।

अभिवादन स्वीकार करने के बाद देवराज ने युधिष्ठिर से कहा– ''पाण्डुपुत्र! तुम प्रसन्न रहो। तुम पृथ्वी पर लंबे समय तक शासन करो! अर्जुन ने बड़ी सावधानी से मुझसे और अन्य देवों से

दिव्यास्त्र प्राप्त किए हैं, अब इसे त्रिलोक में कोई नहीं जीत सकता।'' ऐसा कहते हुए और पाण्डवों को अपना आशीर्वाद देते हुए इंद्र देवलोक लौट गए।

लेकिन अर्जुन द्वारा दिव्यास्त्र प्राप्त करने और देवों द्वारा उन्हें अपना आशीर्वाद देने की कथा सुनने का उत्साह युधिष्ठिर और अन्य भाइयों में एक कौतूहल उत्पन्न कर रहा था। यह सोचते हुए युधिष्ठिर ने सब भाइयों के मन की बात जानकर अर्जुन से कहा– ''प्रिय अर्जुन! इंद्र और भगवान शंकर का आशीर्वाद तुम्हें मिला कैसे और तुमने उन्हें प्रसन्न करने के लिए क्या विशेष कार्य किया, यह वृत्तांत हमें विस्तार से बताओ।''

''मैं आपकी आज्ञा से भृगुतुंग पर्वत पर तप कर रहा था। यहां से मैं हिमालय पर चला गया और एक मास तक कंद और फल का आहार किया, दूसरे मास केवल जल पिया, तीसरे मास निराहार रहा। इस प्रकार क्रमशः पांचवां महीने के बीतने पर एक सूअर मेरे सामने आकर खड़ा हो गया और उसके पीछे किरात वेशधारी पुरुष। वास्तव में ये भगवान शिव थे, जिन्होंने मेरी परीक्षा लेने के लिए ही यह लीला रचाई थी। मेरे और उनके बीच युद्ध में मेरी क्षमता देखकर भगवान शंकर ने प्रसन्न होकर मुझे वर दिया और अपने पाशुपत अस्त्रों से मेरा सम्मान किया। इंद्रदेव से मुझे अस्त्र विद्या सीखने का अवसर मिला और इंद्र के आदेश पर ही मैंने वायु, अग्नि, वसु, वरुण आदि देवों से अस्त्र शिक्षा प्राप्त की।

देवराज इंद्र का सारथी मातुलि मेरे पास स्वयं इंद्र का संदेश लेकर आया और कहा कि देवराज मुझसे मिलना चाहते हैं। यह मेरे लिए परम सौभाग्य का समाचार था। मैंने पर्वतराज हिमालय की परिक्रमा की और फिर रथ पर सवार हो गया। मातुलि का रथ वायुवेग से दौड़ रहा था, लेकिन मैं स्थिर बैठा हुआ था। यह मातुलि के लिए आश्चर्य की बात थी क्योंकि स्वयं देवराज भी तेज गति पर हिल उठते थे। मातुलि के साथ मैंने संपूर्ण अमरावती के दर्शन किए, वहीं मेरी मित्रता चित्रसेन से हुई।

इंद्रलोक में अनेक अप्सराएं, गंधर्व और किन्नर बालाएं अपने नृत्य और सौंदर्य से वातावरण को रंगीन बनाए रखती थीं लेकिन मैंने इन सब बातों को असार जानकर अस्त्र विद्या में ही अपना समय लगाया। धीरे-धीरे मैं काफी निपुण हो गया तो एक दिन देवराज ने मुझसे कहा कि सदा सावधान रहते हुए व्यवहार कुशल, सत्यप्रिय, जितेंद्रिय, उपसंहार, आवृत्ति, प्रायश्चित और प्रतिघात भी अच्छी तरह जानते हो। ये सब मैंने तुम्हें सिखाए हैं।

अब समय आ गया है कि तुम मुझे गुरुदक्षिणा दो। निवात कवच नाम के दानव मेरे शत्रु हैं, वे तीन करोड़ बताए जाते हैं, जिनका रूप, बल और प्रभाव समान है। तुम उन्हें मार डालो, बस तुम्हारी गुरुदक्षिणा पूरी हो जाएगी। ऐसा कहकर इंद्र ने अपना अत्यंत प्रभावपूर्ण दिव्य रथ दिया और मेरे सिर पर प्रकाशमय मुकुट पहना दिया और मेरे गाण्डीव की प्रत्यंचा चढ़ा दी। मेरे रथ की गड़गड़ाहट सुनकर सब लोग मुझे देवराज समझकर मेरे पास चकित होकर आए और वहां मुझे देखकर उन्होंने कहा– ''अर्जुन! तुम क्या करने की तैयारी में हो?'' तो मैंने उन्हें बताया कि मैं निवात कवचों का वध करने के लिए जा रहा हूं, आप मुझे आशीर्वाद दें जिससे मेरा मंगल हो। तब सभी देवों ने मुझ पर प्रसन्न होकर मुझसे कहा– हे अर्जुन! इस रथ पर बैठकर देवराज ने अनेक दैत्यों को जीता है, तुम भी विजयी होओंगे और निवात कवचों को परास्त करोगे। उन देवों से आशीर्वाद प्राप्त करके मैं रथ पर सवार राक्षसों का वध करने के लिए चल पड़ा।

दानव संख्या में इतने अधिक थे कि मैं उन्हें मारता था और वे फिर से सामने खड़े हो जाते थे। वे तड़ातड़ मक्खी के छत्ते की तरह मुझ पर गिरते और मैं उन्हें फिर से धराशायी कर देता।

दोनों ओर से भीषण युद्ध हुआ, मैंने ब्रह्मास्त्र भी चलाया और इंद्रास्त्र के द्वारा वज्र के समान बाण छोड़कर उन्हें चूर-चूर कर दिया। दानवों ने मेरा यह बल देखकर मायावी चाल चली और अग्नि व वायु का मुझ पर प्रहार किया। वे मेरे ऊपर अदृश्य होकर वार करने लगे तो मैं भी अदृश्य अस्त्र के द्वारा उनका जवाब देने लगा। एक बार बीच में जैसे ही मेरा साहस टूटने लगा

तो मातुलि ने मुझे सहारा दिया और मुझसे कहा– डरो मत अर्जुन! वज्रास्त्र का प्रयोग करो। मैंने तभी देवराज का प्रिय अस्त्र वज्र छोड़ा, जिससे निवात और कवच दानव समाप्त हो गए। चारों ओर उनकी विधवाओं का रोना-पीटना प्रारंभ हो गया।

मातुलि के साथ मैं उस नगर में गया जो अमरावती से भी अद्भुत सुंदर था। यहां देवतागण क्यों नहीं रहते, मेरे यह पूछने पर मातुलि ने बताया कि पहले यह नगर हमारे देवराज इंद्र का ही था, परंतु निवात कवचों ने उन्हें यहां से भगा दिया। महान तपस्या करके दानवों ने ब्रह्मा से यह स्थान अपने रहने के लिए मांग लिया।

''देवराज इंद्र ने वास्तव में तुम्हें इनका वध करने के लिए ही अपने अस्त्र दिये हैं। तुमने जिन असुरों का संहार किया है अर्जुन! वे देवताओं द्वारा अवध्य थे।''

इस प्रकार उस नगर में शांति स्थापित करके मातुलि के साथ अर्जुन देवलोक चले आए।

अर्जुन ने आगे बताया– ''लौटते समय मार्ग में सूर्य के समान कांति वाला एक दूसरा दिव्य नगर दिखाई दिया। उसे इच्छानुसार जहां चाहे वहां ले जाया जा सकता था। उसमें भी दैत्य लोग रहते थे। जब मैंने उस नगर के बारे में मातुलि से पूछा तो उसने बताया कि पुरोमा और कालिका नाम की दो दानवियों ने सहस्रों वर्ष तक ब्रह्माजी की स्तुति में सैकड़ों वर्ष तक कठोर तप किया। तप के अंत में ब्रह्माजी ने प्रसन्न होकर उन्हें संतानों सहित सुरक्षित रहने के लिए यह बहुत रमणीक आकाशचारी नगर प्रदान किया। इस नगर में कालिका और पुरोमा की ही संतानें रहती हैं। यह सुनकर मुझको क्रोध आ गया और मैंने कहा– कि जो दुष्ट देवराज से द्रोह करते हैं, मैं उन्हें अभी तहस-नहस कर देता हूं।

मुझे युद्ध के लिए आया देखकर दैत्यों ने कवच धारण कर मुझ पर बड़े ही वेग से प्रहार किया। मैंने अपनी बाणवर्षा से उनकी शस्त्र वृष्टि को रोककर उन सबको मोहित कर दिया। वे अब आपस में ही एक-दूसरे पर प्रहार करने लगे। जिसका लाभ उठाकर मैंने अनेक बाण छोड़कर सैकड़ों के सिर काट डाले। यह देखकर वे अपने नगर में घुस गए और उस नगर

सहित आकाश में उड़ गए। मैंने मायावी अस्त्रों से उन पर विजय कठिन होती जानकर दिव्यास्त्र का प्रयोग किया पर वे मेरे दिव्यास्त्र भी काटने लगे। तब मुझे अंत में अपना वह प्रसिद्ध पाशुपत अस्त्र गाण्डीव पर चढ़ाकर छोड़ना पड़ा।

इसके बाद उन दैत्यों के विनाश में एक पल का भी समय नहीं लगा। इस विजय को देखकर मुझे अत्यंत प्रसन्नता हुई और मैं विजय के उल्लास में देवलोक लौट आया।

इंद्र अपनी दिव्य दृष्टि से मेरा यह कौशल देख रहे थे। उन्होंने मुझसे प्रसन्न होकर कहा– ''हे अर्जुन! मेरे शत्रुओं का संहार करके तुमने अपनी गुरु दक्षिणा चुका दी है। अब तुम देवता, दानव, यक्ष, राक्षस, असुर, गंधर्व, पक्षी और नाग सभी के लिए युद्ध में अजेय हो गए हो। तुम्हारे बाहुबल से जीती हुई पृथ्वी पर धर्मराज युधिष्ठिर निष्कंटक राज्य करेंगे। भूमंडल पर कोई भी योद्धा तुम्हें नहीं हरा पायेगा। वत्स! जब तक तुम संग्राम भूमि में खड़े रहोगे, भीम, द्रोण, कर्ण, शकुनि अथवा कृपाचार्य तुम्हारी सोलहवीं कला के बराबर भी नहीं होंगे।''

''इसके पश्चात् देवराज इंद्र ने मुझे अपना दिव्य अभेद्य कवच और यह स्वर्ण माला प्रदान की। साथ में देवदत्त नाम का यह शंख भी दिया, जिसकी ध्वनि बहुत ऊंची है। यह दिव्य किरीट तो उन्होंने स्वयं ही मेरे मस्तक पर रखा। इसके बाद ये दिव्य वस्त्र और आभूषण भी दिए। पांच वर्ष कब बीत गए वहां रहते, यह पता ही नहीं चला।''

अर्जुन ने यह प्रवास कथा सुनाते हुए अपने दिव्यास्त्रों, गाण्डीव और शंख को अपने भाइयों को दिखाया। वह अपना प्रयोग प्रारंभ करना चाहते थे, तभी नारदजी ने उनसे कहा– ''ठहरो अर्जुन! ऐसा कदापि नहीं करना, इन अस्त्रों का कौशल केवल युद्ध में ही प्रयोजनीय है।''

अर्जुन ने देवर्षि नारद को प्रणाम करते हुए उनका आदेश स्वीकार किया और भाइयों सहित वन में प्रसन्नतापूर्वक निवास करने लगे।

विराट नगरी में अर्जुन

सरोवर के किनारे यज्ञ से वरदान पाने के पश्चात् युधिष्ठिर ने अपने सब भाइयों को बुलाकर सूचना दी कि राज्य से बाहर होकर वन में रहते हुए हम लोगों को पूरे बारह वर्ष बीत गए। तेरहवां अज्ञातवास का वर्ष प्रारंभ हो गया है। इस पूरे वर्ष बड़ी कठिनाई से, गुप्त रहते हुए हमें अपना समय बिताना है।

अर्जुन यह जानते थे कि यक्ष रूप में धर्मराज ने हमें यह वरदान तो दे ही दिया है कि कोई भी मनुष्य हमें पहचान नहीं पाएगा। फिर भी उन्होंने मत्स्य देश के राजा विराट के यहां वास करने का विचार किया।

समस्या थी कि वहां पर रहकर किस कार्य को किया जाए। गुण और शक्ति के आधार पर यह निश्चित किया गया कि युधिष्ठिर कंक रूप में राजा को पासे का खेल सिखाएंगे, भीमसेन रसोई में काम करेंगे, अर्जुन वृहन्नला के रूप में संगीत सिखाएंगे। नकुल अश्व विद्या में निपुणता के कारण अस्तबल में काम करेंगे। सहदेव राजा की गौशाला में कार्य करेंगे। रानी द्रौपदी सैरन्ध्री रूप में राजमहल की स्त्रियों की सेवा करेंगी।

यह विचार करके पाण्डवों ने धौम्य मुनि से सलाह ली। मुनि ने उन्हें व्यवहार योग्य आचरण की शिक्षा दी और कहा, राजा से मिलने के लिए सदैव द्वारपाल से मिलकर, आज्ञा से ही मिलना। कभी भी राजा पर पूर्ण विश्वास मत करना, उसी आसन पर बैठें जिस पर कोई दूसरा न बैठे। राजा के रनिवास में मेलजोल न बढ़ाएं। जिनसे राजा की शत्रुता हो, उनसे बचकर रहें। छोटे से छोटा कार्य भी राजा को बताकर ही करें। राजा जिस कार्य के लिए आज्ञा दें, उसका ही पालन करें।

विद्वान पुरुष राजा के दाएं-बाएं, शस्त्रप्रहरी पीछे रहें, राजा की अप्रिय बात भी दूसरों के सम्मुख प्रकाशित न करें। इस प्रकार संक्षेप में धौम्य मुनि ने पाण्डव भाइयों को राजा की नगरी में रहने के लिए एक सामान्य आचार संहिता समझा दी।

इस प्रकार पाण्डव बंधु पैदल ही महाराज विराट की नगरी की ओर प्रस्थान कर गए।

इनके सामने एक समस्या थी, अपने अस्त्र-शस्त्र कहां छिपाएं क्योंकि साथ में रहने पर रहस्य खुलने का भय था। किराट की राजधानी में पहुंचकर पास ही श्मशान भूमि के निकट एक टीले पर शमी का सघन वृक्ष था, जिसके ऊपर किसी का चढ़ना सरल नहीं था। उस समय वहां किसी अन्य की उपस्थिति भी नहीं थी, एकदम सुनसान था।

ऐसा कहते हुए वे लोग वहां अपने अस्त्रों को रखने का उपाय करने लगे। नकुल वृक्ष पर चढ़ गए, वृक्ष के खोडरे में, जहां वर्षा के पानी की भी संभावना नहीं थी, सबके धनुष रखकर एक मजबूत रस्सी से शाखा को बांध दिया। इसके बाद एक लाश लाकर उसे उस वृक्ष पर लटका दिया। इसके शरीर की दुर्गंध से कोई वृक्ष के पास भी नहीं फटकेगा।

राजा की नगरी में पहुंचकर स्त्रियों के समान वस्त्र-आभूषण पहनकर अर्जुन घूमने लगे। कानों में कुण्डल, हाथों में शंख तथा स्वर्ण चूड़ियां थीं। लंबे केश, बड़ी-बड़ी भुजाएं, हाथी के समान मस्तानी चाल, मानो वह अपने एक-एक पग से पृथ्वी को कंपाता चल रहा था। राजा के दरबार में इस रूप में पहुंचकर अर्जुन ने राजा विराट से कहा– ''महाराज! मैं नपुंसक हूं, मैं नाच-विद्या में निपुण हूं। आप अपने राज्य में संगीत शिक्षक का कार्य मुझे दे सकते हैं।''

राजा विराट ने अर्जुन को अपनी पुत्री उत्तरा तथा महल की अन्य राजकुमारियों को संगीत एवं नृत्य की शिक्षा के लिए नियुक्त कर लिया। विराट ने इसके लिए वृहन्नला की संगीत, नृत्य और वाद्य यंत्र गान की परीक्षा ली। तरुणियां भेजकर उसके नपुंसकत्व की जांच कराई। इसके पश्चात् ही उसे अंत:पुर में प्रवेश मिला। यहां रहकर वृहन्नला रूपधारी अर्जुन उत्तरा और उसकी सखियों तथा अन्य दासियों को भी गाने-बजाने और नाचने की शिक्षा देने लगे। अपने श्रम और लगन से वह उन सबके प्रिय हो गए। कपट वेश में रहते हुए भी अर्जुन सदा अपने मन को नियंत्रित रखते थे। इससे बाहर या भीतर कोई भी उन्हें पहचान नहीं सका।

वृहन्नला अर्जुन का कौरवों से विराट के पक्ष में युद्ध

वीरवर भीमसेन द्वारा विराट के प्रधान सेनापति कीचक को मार देने के बाद त्रिगर्त देश के राजा सुशर्मा ने मत्स्य देश पर आक्रमण कर दिया। उधर दुर्योधन ने भी कौरव सेना के साथ विराट पर आक्रमण कर दिया। त्रिगर्त नरेश सुशर्मा की दुर्गति तो भीम आदि ने कर दी लेकिन इस बीच कौरवों की सेना से भिड़ने विराट पुत्र राजकुमार उत्तर गए। द्रौपदी के कहने से उत्तर के सारथी के रूप में वृहन्नला को भेजा गया। उत्तर वृहन्नला के वास्तविक रूप को समझ नहीं पाया था।

राजकुमार उत्तर राजधानी से निकलकर बाहर आया और अपने सारथी से बोला– ''तुम जिधर कौरव लोग गए हैं उधर ही रथ ले चलो। उन्हें जीतकर, उनसे गौएं लेकर जल्दी ही हमें राजधानी लौटना है।''

यह सुनकर वृहन्नला अर्जुन ने रथ के घोड़ों की लगाम ढीली कर दी। अर्जुन की हांक से ही वे घोड़े हवा से बातें करने लगे। ऐसा लगने लगा मानो वे आकाश से बातें कर रहे हों।

थोड़ी दूरी पर ही उन्हें कौरव सेना दिखाई दी। वह विशाल वाहिनी हाथी-घोड़े रथों से सज्जित थी। कर्ण, दुर्योधन, भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, अश्वत्थामा आदि महान धनुर्धर उसकी रक्षा में थे।

यह दृश्य देखकर राजकुमार उत्तर के रोंगटे खड़े हो गए। ये तो बड़े विकट योद्धा हैं इनसे तो देवगण भी मोर्चा नहीं ले सकते।

''राजकुमार उत्तर! तुमने राममहल में अपने जिस पुरुषार्थ की बात की थी, अब इन वीरों के सामने उसे दिखाने का समय आ गया है। यदि इन्हें परास्त किए बिना तुम राजधानी वापस लौट गए तो तुम्हारा उपहास होगा। सैरन्ध्री ने मुझे तुम्हारे सारथी के रूप में नियुक्त किया है, मैं तो गौएं लेकर ही रथ को वापस लौटाऊंगा।''

अर्जुन से ऐसा सुनकर भी उत्तर ने कहा– ''ये लोग गौएं ले जाते हैं तो ले जाएं, मैं तो इनसे युद्ध नहीं कर पाऊंगा।'' उत्तर इसी प्रकार घबराकर बहुत अनुनय-विनय करता रहा, किन्तु अर्जुन हंसते-हंसते उसे रथ के पास ले आए और कहने लगे– ''राजकुमार! यदि शत्रुओं से युद्ध करने की तुम्हारी हिम्मत नहीं है तो लो तुम घोड़ों की रास संभालो, मैं युद्ध करता हूं। तुम इसे रथियों की सेना से चले चलो, डरना मत, मैं अपने बाहुबल से तुम्हारी रक्षा करूंगा।''

''अरे तुम डरते क्यों हो, हो तो क्षत्रिय राजकुमार ही। तुम शत्रु के सामने आकर कैसे घबरा रहे हो। देखो मैं इस दुर्जय सेना में घुसकर कौरवों से लडूंगा और तुम्हारी गौएं छुड़ाकर लाऊंगा। तुम जरा मेरे सारथी का काम कर दो।''

अर्जुन ने युद्ध से डरकर भागते हुए राजकुमार उत्तर को समझाकर रथ पर चढ़ा लिया।

जब भीष्म, द्रोण आदि प्रधान-प्रधान कौरव महारथियों ने उस नपुंसक वेशधारी पुरुष को उत्तर को रथ में चढ़ाकर शमी वृक्ष की ओर जाते देखा तो वे अर्जुन की आशंका करके मन-ही-मन बहुत डरे।

द्रोणाचार्य ने यह देखकर भीष्म से कहा– ''गंगापुत्र! यह स्त्री वेशधारी इंद्र का पुत्र कपिध्वज अर्जुन जान पड़ता है। यह अवश्य ही हमें जीतकर गौएं वापस ले जाएगा।

''इस सेना में मुझे तो इसका सामना करने वाला कोई भी योद्धा दिखाई नहीं पड़ता। हिमालय पर इसने तपस्या करके किरात वेशधारी भगवान शंकर को भी छका दिया था और अपने पौरुष से प्रसन्न कर लिया था।''

आचार्य से ऐसा सुनकर कर्ण ने कहा– ''आचार्य! आप सदा ही अर्जुन की प्रशंसा करते हुए हमारी निंदा करते हैं, किन्तु वह मेरे और दुर्योधन के सोलहवें अंश के बराबर भी नहीं है।''

दुर्योधन ने यह जानकर कर्ण से कहा– ''यदि यह अर्जुन है तब तो मेरा कार्य ही पूर्ण हो गया समझो, क्योंकि पहचान लिए जाने के कारण इन पाण्डवों को फिर बारह वर्ष के लिए वनवास

भोगना पड़ेगा। यदि कोई अन्य पुरुष नपुंसक के रूप में आया है तो मैं इसे मृत्यु के घाट उतार ही दूंगा।''

अर्जुन ने इनकी बातचीत से अलग उत्तर को शमी वृक्ष की ओर रथ बढ़ाने को कहा। वृक्ष के पास रथ पहुंचने पर अर्जुन ने उत्तर से कहा– ''राजकुमार! मेरी आज्ञा मानकर तुम शीघ्र ही इस वृक्ष पर से धनुष उतारो। ये तुम्हारे धनुष मेरे बाहुबल को सहन नहीं कर सकेंगे। इस वृक्ष पर पाण्डवों के शस्त्र रखे हुए हैं।''

यह सुनकर तुरंत ही उत्साहित राजकुमार उत्तर रथ से उतर पड़ा और वृक्ष पर चढ़कर उसने उन्हें नीचे उतार लिया, जो वस्त्रादि लिपटे हुए थे, उन्हें खोल दिया और अर्जुन के आगे रख दिया।

उत्तर ने देखा वहां गाण्डीव के अलावा चार धनुष और हैं। उन सूर्य के समान तेजस्वी अस्त्र पिटारे को खोलते ही उनकी कांति सब ओर फैल गई। अर्जुन ने अपना गाण्डीव उठा लिया।

उत्तर को जब अर्जुन ने अपना पूरा परिचय दे दिया तो उत्तर ने कहा– ''अब मैं इनसे नहीं डरता क्योंकि मैं अच्छी तरह जान गया हूं कि आप संग्राम भूमि में कृष्ण और इंद्र के सामने भी डट सकते हैं, इसलिए मैं युद्ध क्षेत्र में आपके साथ देवताओं से भी मुकाबला कर सकता हूं। पुरुष श्रेष्ठ! मैंने अपने पिताजी से सारथी का काम सीखा था, इसलिए मैं आपके रथ के घोड़ों को अच्छी तरह संभाल लूंगा।''

इस प्रकार उत्तर को अपना सारथी बनाकर अर्जुन ने शमी वृक्ष की परिक्रमा की, अग्नि द्वारा प्रदत्त रथ को पुकारा। वानर चिह्न युक्त दिव्य पताका वाला एक दिव्य रथ आकाश से उतर आया। अर्जुन ने मन-ही-मन इंद्र, सूर्य, अग्नि आदि देवों का स्मरण करते हुए उस रथ की प्रदक्षिणा की और उस पर सवार होकर कौरवों की सेना की ओर बढ़ गए।

कौरवों ने युद्ध के लिए अपनी पूरी व्यूह रचना कर ली थी। वे यह जान चुके थे कि शत्रु से लोहा लेना कठिन भी हो सकता है, अत: उसके लिए पूरी तैयारी उन्होंने कर ली।

अर्जुन अपने रथ की घरघराहट के साथ आकाश को गुंजायमान करते हुए आ गए। द्रोणाचार्य ने यह देखते ही कह दिया– ''वीरों ! यह जो रथ आ रहा है, इस पर अर्जुन की ध्वजा फहरा रही है। इस उत्तम रथ पर बैठा यह महारथी अर्जुन ही वज्र के समान कठोर टंकार करने वाले गाण्डीव को खींच रहा है।''

एक साथ ही दो बाण तभी द्रोणाचार्य के चरणों पर आकर गिरे। ये अर्जुन के प्रणाम बाण थे। दूसरे दो कानों को स्पर्श करते निकल गए, वे भीष्म के चरणों पर पड़े थे। वह इस समय अति मानवीय कर्म करके वनवास से लौटा था। अर्जुन ने इन बाणों से प्रणाम भी किया और कुशल क्षेम भी पूछी।

ऐसा करने के बाद अर्जुन ने अपने सारथी से कहा– ''तुम रथ को कौरव सेना से इतनी दूरी पर ले चलो, जितनी दूर एक बाण जाता है। वहां से मैं देखना चाहूंगा कुरु कुलाधम दुर्योधन कहां है?''

अर्जुन को दुर्योधन कहीं भी दिखाई नहीं दिया, शायद वह दक्षिणी मार्ग से गौएं लेकर अपने प्राण बचाने के लिए हस्तिनापुर भाग गया है। अच्छा इस रथ सेना को छोड़ दो, यह आदेश देते हुए अर्जुन ने उत्तर से कहा– ''उस ओर चलो जिधर दुर्योधन गया है।''

दुर्योधन के पास पहुंचकर अर्जुन अपना नाम सुनाकर उसकी सेना पर टिड्डियों के समान बाण बरसाने लगा। उनके छोड़े बाणों से ढक जाने के कारण पृथ्वी-आकाश ही दिखाई देने बंद हो गए। अर्जुन के शंख की ध्वनि रथ के पहियों की गड़गड़ाहट, गाण्डीव की टंकार और उनकी ध्वजा में रहने वाले दिव्य प्राणियों के शक से पृथ्वी कांप उठी और गौएं पूंछ उठाकर रम्भाती हुई दक्षिण की ओर भागने लगीं।

धनुर्धारी अर्जुन के सामने कोई न टिक सका। उसने सेना को हराकर गौओं को जीत लिया और इसके बाद युद्ध की इच्छा से वह दुर्योधन की ओर चला।

कौरवों ने यह देखा कि मुक्त गाएं गति से विराट नगर की ओर भागने लगीं और अर्जुन सफल होकर दुर्योधन की ओर बढ़ा चला आ रहा है।

कौरवों की सेना के इस रूप को देखकर अर्जुन ने विराट कुमार उत्तर से कहा– ''आजकल दुर्योधन का सहारा पाकर कर्ण बड़ा अभिमानी हो रहा है। वह मुझसे युद्ध करना चाहता है। अत: पहले मुझे उसी के पास ले चलो।''

उत्तर ने उसी के अनुसार रथ को युद्ध की मध्यभूमि के पास ले जाकर खड़ा कर दिया। इतने में ही चित्रसेन, संग्रामजित और शत्रुसह तथा जय आदि महारथी उसके मुकाबले में आ गए। युद्ध छिड़ गया, अर्जुन ने इनके रथों को अग्नि के समान जलाकर राख कर दिया।

ऐसे में दुर्योधन का अनुज विकर्ण रथ पर चढ़ गया और विपाठ नाम के बाणों की वर्षा करने लगा। अर्जुन ने उसके रथ की ध्वजा के टुकड़े-टुकड़े कर दिए। विकर्ण तो भाग गया, किन्तु शत्रु, तप नाम का राजा मारा गया। इसके पश्चात् तो अर्जुन ने विकराल रूप धारण कर कौरव वीरों के हौसले तोड़ना प्रारंभ कर दिया।

वह शत्रुओं का संहार करता हुआ युद्धभूमि में विचार ही रहा था कि इतने में कर्ण के भाई संग्राम से उसकी मुठभेड़ हो गई। ऐसे ही बाण से संग्रामजीत भी चित्त हो गए।

कर्ण ने भाई का वध होते देखा तो वह पराक्रम के जोश में आ गया और अर्जुन की ओर दौड़ पड़ा, अपने बाणों से कर्ण ने अर्जुन को बींध दिया, उसके घोड़ों को भी घायल कर दिया।

अर्जुन ने यह देखा तो गरुड़ की भांति नाग पर वार करने के समान कर्ण पर भीषण प्रहार शुरू कर दिए। सभी कौरव वीर इन दोनों का युद्ध देखने के लिए स्थिर चित्त खड़े-के-खड़े रह गए।

अर्जुन इस समय क्रोध और उल्लास में भरा हुआ था। उसने एक-एक क्षण में इतनी बाण वृष्टि की कि रथ, सारथी व घोड़ों सहित कर्ण बिल्कुल छिप ही गया।

अर्जुन ने कौरवों के अन्य अनेक बड़े-बड़े महारथियों की भी यही दुर्गति की। भीष्म आदि की भी अर्जुन के सामने एक न चली।

अर्जुन को दूसरी ओर लगा देख कर्ण ने अर्जुन के तमाम बाणों को काट दिया और उसके घोड़ों तथा सारथी को बेध दिया। रथ की ध्वजा को काट डाला, अर्जुन को भी घायल कर दिया। कर्ण के बाणों से अर्जुन फुफकार उठा और भीषण गर्जना करते हुए कर्ण पर टूट पड़ा। उसने फिर से कर्ण को छकाना प्रारंभ कर दिया।

कर्ण को इस प्रकार रथहीन देखकर विकर्ण ने उसे अपने रथ पर बैठाकर रणभूमि से दूर कर दिया।,

अब कर्ण के इस पराभव के बाद दुर्योधन आदि ने अर्जुन का मुकाबला करने की ठानी। यह देखकर अर्जुन ने हंसकर दिव्य अस्त्रों का प्रयोग करते हुए कौरव सेना पर प्रत्याक्रमण किया। इस समय उस सेना के रथ, घोड़े, हाथी और कवच आदि में से कोई भी ऐसा नहीं बचा था, जिसमें दो-दो अंगुल पर अर्जुन के तीखे बाणों का घाव न हो।

अर्जुन के दिव्यास्त्र का प्रयोग, घोड़ों की शिक्षा, उत्तर के रथ हांकने की कला, पार्थ के अस्त्र संचालन का क्रम और पराक्रम देखकर शत्रुपक्ष के वीर भी प्रशंसा करने लगे।

इस समय अर्जुन का वेग प्रलय के समान था। वह उन्हें बराबर भस्म किए जा रहा था। उसका तेजस्वी स्वरूप शत्रुओं को चौंध पैदा कर रहा था।

अर्जुन के दौड़ते हुए रथ का आना तो मालूम पड़ता था, फिर क्या हुआ, शत्रु वीर कैसे भूमि पर आ गए, यह कोई नहीं जान पाता था। अर्जुन ने द्रोण, दुस्सह, अश्वत्थामा, दु:शासन, कृपाचार्य आदि सभी को बाणों से बींध डाला था।

अर्जुन वीरत्व में उत्साहित होकर उत्तर से बोले– ''राजकुमार! मेरा रथ उधर बढ़ाओ जिस रथ के घोड़े लाल हैं, नीली पताका फहरा रही है।'' यह कृपाचार्य का रथ था।

अर्जुन के दिव्य शंख की ध्वनि से दिशाएं गूंजने लगीं। उससे जो प्रतिध्वनि हुई वह वज्रपात के समान जान पड़ती। युद्धार्थी महारथी कृपाचार्य ने भी प्रत्युत्तर में जोर से अपना शंख बजाया, इसका शब्द तीनों लोकों में व्याप्त हो गया।

कृपाचार्य ने अपने धनुष से टंकार करते हुए अर्जुन पर दस हजार बाणों की वर्षा करके विकट गर्जना की। यह देखकर अर्जुन ने मल्ल नाम का तीखा बाण चढ़ाया और कृपाचार्य का धनुष तथा हस्त बाण ही काट डाला। उनके कवच के टुकड़े-टुकड़े कर दिए लेकिन कृपाचार्य राजगुरु थे, अत: यह मर्यादा रखते हुए अर्जुन ने उनके शरीर को तनिक भी क्लेश नहीं पहुंचाया।

कृपाचार्य ने अपने आपको इस प्रकार असहाय देखकर दमकती हुई प्रज्ज्वलित एक शक्ति का अर्जुन पर प्रहार कर डाला। अर्जुन ने उल्का के समान अपने ऊपर आती इस शक्ति को अपने प्रभाव से प्रभावहीन कर दिया। एक बाण से रथ का जुआ काट दिया, घोड़े मार गिराए। साथ ही सारथी का सिर भी धड़ से अलग कर दिया।

कृपाचार्य ने इस प्रकार अपने ऊपर मारक प्रहार होते देखकर गदा हाथ में ली और अर्जुन के ऊपर फेंक दिया। अर्जुन ने कृपाचार्य के गदा वार को भी प्रभावहीन कर दिया।

पास ही कौरव सेना के अन्य वीरों ने जब कृपाचार्य की यह स्थिति देखी तो वे उनकी सहायता को दौड़ पड़े और अर्जुन को चारों ओर से घेरकर बाण वर्षा करने लगे।

उत्तर ने यह देखा तो घोड़ों को बाईं ओर घुमा दिया और उस कुशल सारथी ने यत्रक नामक मंडल बजाकर शत्रुओं की गति रोक दी।

ऐसा देखकर वे कौरव वीर रथहीन कृपाचार्य को लेकर अर्जुन के समीप से भाग खड़े हुए।

कृपाचार्य को इस प्रकार रण से पीछे हटते देख गुरु द्रोण अर्जुन के सम्मुख मुकाबले के लिए आ गए, दोनों ही अस्त्र विद्या, धैर्यवान तथा महान बलवान थे, दोनों ही युद्ध में पराजित होने वाले नहीं थे।

दोनों गुरु-शिष्यों की आपस में मुठभेड़ होते देखकर भरतवंशियों की वह विशाल सभा कांपने लगी।

अर्जुन अपना रथ गुरु द्रोण के पास ले गया और मुस्कुराते हुए प्रणाम करते हुए कहा– ''युद्ध में सदा ही विजय पाने वाले गुरुदेव! हम लोग आज तक तो वन में ही भटकते रहे हैं। अब शत्रुओं से बदला लेना चाहते हैं। आपको हम लोगों पर क्रोध नहीं करना चाहिए। जब तक आप मुझ पर प्रहार नहीं करेंगे, मैं भी आप पर अस्त्र नहीं छोडूंगा, अत: प्रहार की पहल आप ही करें।''

यह सुनकर आचार्य मुस्कराए, उसे आशीर्वाद की मुद्रा में लक्ष्य करके इक्कीस बाण मारे। वे बाण अर्जुन ने बीच में ही काट डाले।

यह देख आचार्य द्रोण ने एक हजार बाण एक साथ अर्जुन पर छोड़ते हुए अपना कौशल दिखाया। अर्जुन के श्वेतवर्णी अश्वों को भी घायल कर दिया। अर्जुन ने फुर्ती से उन बाणों को प्रभावहीन कर दिया।

जब आचार्य के रथ के पास लाखों बाणों की वर्षा होने लगी और वे रथ सहित ढक गए, तब कौरव सेना में हाहाकार मच गया। द्रोणाचार्य के रथ की ध्वजा कट गई थी, कवच छिन्न-भिन्न हो गया था और उनका शरीर भी बाणों से क्षत-विक्षत हो रहा था।

ऐसी स्थिति में थोड़ा-सा अवसर पाकर ही द्रोणाचार्य अपने घोड़ों को हांक तुरंत ही रणभूमि से बाहर हो गए।

अश्वत्थामा ने अपने पिता को रणभूमि से हताश और घायल अवस्था में हटते देखा तो उसने अर्जुन पर धावा बोल दिया। जिस प्रकार मेघ पानी की वर्षा करता है, उसी प्रकार अश्वत्थामा के धनुष से बाणों की वर्षा होने लगी।

किन्तु अर्जुन तो दिव्यशक्ति संपन्न था। अर्जुन ने वायु वेगगामी बाणों की प्रचण्डता को अपने अस्त्रों से धराशायी कर दिया। अश्वत्थामा के घोड़ों को बाण मारकर अधमरा कर दिया।

अश्वत्थामा को एक अवसर मिला, उसने एक बाण मारकर अर्जुन के धनुष की प्रत्यंचा काट दी। बाद में अपना श्रेष्ठ धनुष तानकर अश्वत्थामा ने एक साथ अर्जुन की छाती में कई बाण घोंप दिए।

यह देखकर अर्जुन मुस्कराए और शीघ्र ही गाण्डीव पर नई प्रत्यंचा चढ़ाकर फिर से तैयार हो गए और अश्वत्थामा को छकाना प्रारंभ कर दिया।

अश्वत्थामा का तरकश खाली होता देखकर एक बार फिर कर्ण अर्जुन के सम्मुख सामना करने के लिए आ गए, लेकिन प्रचण्ड अग्नि के समान अर्जुन के मारक बाणों के सामने वह न ठहर सका और शीघ्र ही मूर्च्छित होकर रण से हट गया।

कर्ण पर विजय पाने के बाद अर्जुन ने उत्तर से कहा– ''हे राजकुमार! जहां रथ की ध्वजा में सुवर्णमय ताड़ का चिह्न दिखाई दे रहा है, उसी सेना के समीप रथ को ले चलो। वहां देवता के समान मेरे पितामह भीष्म हैं, वे मेरे पूज्य, मेरे साथ युद्ध करना चाहते हैं।''

उत्तर का शरीर स्वत: ही बाणों से बहुत घायल हो चुका था। फिर भी यदि आपका आदेश है तो चलिए। और रथ भीष्म के सम्मुख पहुंच गया।

कौरवों पर विजय पाने की इच्छा से अर्जुन को अपनी ओर आते देख निष्ठुर पराक्रम दिखाने वाले गंगापुत्र भीष्म ने वीरतापूर्वक उसकी गति रोक दी। तब अर्जुन ने बाण मारकर भीष्म के रथ की ध्वजा जड़ से काटकर गिरा दी।

दु:शासन, विकर्ण, दुस्सह तथा विंशति ने अर्जुन को चारों ओर से घेर लिया।

दु:शासन ने एक बाण से अर्जुन को बींधा तथा दूसरे से अर्जुन को लक्ष्य करके उसे चोट पहुंचाई। अर्जुन ने दु:शासन को छकाते हुए उसके हौसले पस्त कर दिए और घबराया दु:शासन वहां से भागता दिखाई पड़ा।

ऐसा देखकर दुर्योधन, कर्ण और अश्वत्थामा क्रोध से भर गए और अर्जुन पर एक साथ टूट पड़े।

उनके दिव्यास्त्रों से सब ओर से घिर जाने के कारण अर्जुन के शरीर का सारा भाग बाणों से बिंध गया था।

अर्जुन अब भी हंस रहा था, उसने अपने गाण्डीव पर ऐंद्रास्त्र का संधान करके बाणों की झड़ी लगा दी। सारे कौरव जो एक साथ आए थे, बाणों से ढक गए।

सबका उत्साह ठण्डा पड़ गया, सेना तितर-बितर हो गई। सभी योद्धा जान बचाने की जुगत में इधर-उधर भागने लगे। यह देखकर भीष्म ने सुवर्ण जटिल धनुष और मर्मभेदी बाण के साथ अर्जुन पर आक्रमण किया।

उन्होंने अर्जुन की ध्वजा पर फुंफकारते सर्पों के समान आठ बाण मारे। यह देख अर्जुन ने एक बड़े मल्ल से भीष्म का छत्र ही काट डाला।

छत्र कटते ही वह पृथ्वी पर गिर पड़ा, साथ ही ध्वजा को भी क्षतिग्रस्त कर दिया। घोड़ों, पार्श्व रक्षक तथा सारथी को भी घायल कर दिया। भीष्म के लिए यह एक अप्रत्याशित पराजय थी। वह इसे सहन नहीं कर सके।

क्रोध में भीष्म ने अर्जुन पर दिव्यास्त्रों का प्रहार प्रारंभ कर दिया। पहले तो दोनों ही महारथियों में दिव्यास्त्रों का युद्ध हुआ, फिर बाणों का संग्राम छिड़ा। अर्जुन ने भीष्म का धनुष ही काट दिया।

भीष्म ने अपने बाणों से अर्जुन की बाईं पसली बींध डाली। यह देख वीरवर अर्जुन ने भीष्म की छाती बाणों से बींध डाली।

भीष्म को इस आघात से अत्यंत पीड़ा हुई और वे रथ का पक्ष थामकर बैठ गए। भीष्म का सारथी यह देखकर पितामह को युद्धभूमि से बाहर ले गया।

भीष्म को पराजित होता देख दुर्योधन अपने रथ की पताका फहराता हुआ अर्जुन के सम्मुख आकर भिड़ गया लेकिन जहां आचार्य द्रोण, अश्वत्थामा और युद्ध विशारद भीष्म को पराजय का मुंह देखना पड़ा हो, कर्ण को मुंह की खानी पड़ी हो, वहां दुराभिमानी दुर्योधन कितनी देर टिक पाता।

बाणों से घायल होकर दुर्योधन के मुंह से रक्त प्रवाह शुरू हो गया और वह अपनी यह दुर्गति देखकर भाग खड़ा हुआ।

दुर्योधन को भागता देख अर्जुन ने कहा– ''कौरव कुल के गौरव धृतराष्ट्रनंदन! युद्ध में पीठ दिखाकर क्यों भाग रहे हो? क्या आगे-पीछे तुम्हारा कोई रक्षक नहीं रहा, तुम्हारे तरकस के सारे महारथी चुक गए?''

यह दुर्योधन के लिए मारक चुनौती थी। वह फिर से लौटकर अर्जुन से भिड़ गया। यह देख कर्ण भी उसकी सहायता के लिए उत्तर दिशा से आ गया। दु:शासन भी आ गया।

अर्जुन ने अपने अस्त्र छोड़ते हुए उन महारथियों के अस्त्रों को प्रभावहीन कर दिया और कौरवों को लक्ष्य करके सम्मोहन अस्त्र का प्रहार किया, जिसका निवारण कौरवों से नहीं हो सका। इसके बाद अपने शंख से ऊंची ध्वनि उत्पन्न की। शंख की ध्वनि से सभी कौरव वीर अचेत हो गए। उनके हाथों से धनुष और बाण गिर पड़े।

यह देख अर्जुन को उत्तरा की बात याद आ गई, अत: उसने उत्तर से कहा– ''राजकुमार! जब तक इन कौरवों को होश नहीं आता, तब तक तुम सेना के बीच से निकल जाओ और द्रोणाचार्य तथा कृपाचार्य के श्वेत, कर्ण के पीले, अश्वत्थामा और दुर्योधन के नीले वस्त्र लेकर लौट आओ।''

अर्जुन जानते थे कि पितामह भीष्म सम्मोहनास्त्र का निवारण जानते हैं, इसलिए उनके घोड़ों को अपनी बाईं ओर छोड़कर जाना।

अर्जुन के ऐसा कहने पर उत्तर ने घोड़ों की बागडोर छोड़ दी और रथ से कूद पड़ा और महारथियों के वस्त्र लेकर शीघ्र ही लौट आया तथा अब विजय की मुद्रा में रथ हांककर अर्जुन को युद्ध के घेरे से बाहर ले आया।

अर्जुन को लौटता देख भीष्म उसे बाणों से मारने लगे, तब अर्जुन ने पितामह के घोड़ों को तो मार दिया तथा उन्हें मारक बाणों से बींध दिया और फिर उन्हें निस्सहाय करके युद्धभूमि में छोड़कर स्वयं युद्धभूमि के चक्र से बाहर हो गया।

कुछ देर बाद कौरवों को होश आ गया। दुर्योधन ने देखा अर्जुन युद्ध के घेरे से बाहर अकेला खड़ा है, तो वह भीष्म से घबराहट के साथ बोला– ''पितामह! यह आपके हाथ से कैसे बच गया? आप अब भी इसका मान मर्दन कीजिए जिससे यह छूटने न पाए।''

भीष्म ने हंसकर कहा– ''अरे कुरुराज! जब तू अपने विचित्र धनुष और बाणों को त्यागकर यहां अचेत पड़ा हुआ था, उस समय तेरी बुद्धि कहां थी, पराक्रम कहां चला गया था? अरे अर्जुन कभी निर्दयता का व्यवहार नहीं कर सकता, उसका मन कभी पापाचार में प्रवृत्त नहीं होता, वह

त्रिलोकी के राज्य के लिए भी अपना धर्म नहीं छोड़ सकता। यही कारण है उसने इस युद्ध में हम सबको जीवित छोड़ दिया।''

''अब तू यदि अपना हित चाहता है तो अहंकार छोड़ दे, तू अर्जुन के अहंकार मर्दन की बात कर रहा है, देख तेरा, कर्ण आदि तेरे हितैषियों का अहंकार मर्दन अकेले अर्जुन ने कर दिया है, यदि तुझमें बुद्धि है तो हस्तिनापुर लौट चल।''

अर्जुन ने जब कौरव सेना को इस प्रकार लौटते देखा तो वह भी गायों सहित विराट की नगरी में राजकुमार उत्तर के साथ लौट आए।

कौरवों के साथ अर्जुन का यह अद्भुत युद्ध देखकर देवतागण बहुत प्रसन्न हुए और अर्जुन के पराक्रम का स्मरण करते हुए अपने-अपने लोक को चले गए।

उत्तरा के साथ अभिमन्यु का विवाह

संग्राम में कौरवों को जीतकर अर्जुन विराट की गायों को लेकर लौट आया। उस समय जो सैनिक जंगलों में अर्जुन के भय से छिप गए, वे बाहर निकल आए थे। वे भूख-प्यास से पीड़ित अर्जुन की शरण में आए और कहने लगे– ''हम आपके अधीन हैं।'' अर्जुन ने उन्हें अभयदान देकर विराट नगर की ओर मुंह किया।

लौटते हुए उत्तर से अर्जुन ने कहा– ''हे राजकुमार! तुम सत्य जान गए हो, हम पांचों पाण्डव तुम्हारे पिता के पास ही गुप्तवास में रह रहे हैं। किन्तु जब मैं उचित समझूंगा यह रहस्य प्रकट कर दूंगा, तुम अभी उस पर कुछ भी प्रकट न करना।''

इसके बाद अर्जुन फिर श्मशान भूमि में आया और उसी वृक्ष पर उसी प्रकार अस्त्रों को छिपाकर रखवा दिया और उत्तर का सारथी बनकर राजमहल की ओर रथ को दौड़ा दिया। अब वह फिर वृहन्नला के रूप में आ चुका था।

ग्वालों ने नगर में प्रवेश करते ही यह सूचना दी कि हम लोग विजयी होकर लौट आए... दक्षिण दिशा से राजा विराट भी गौधन को विजित करके ले आए थे, उनके साथ चारों पाण्डव भाई भी थे।

लौटने पर महाराज को यह समाचार मिला कि उनके पीछे राजकुमार उत्तर, कौरव सेना से गौओं को मुक्त कराने गया है और वृहन्नला उसका सारथी बना है तो उन्हें बड़ी घबराहट हुई।

युधिष्ठिर ने कहा– ''महाराज! चिंता न कीजिए वृहन्नला अच्छा सारथी है उसके होते राजकुमार उत्तर सुरक्षित हैं।''

तभी महलों में राजकुमार उत्तर की विजय का समाचार आ गया कि वे कौरव सेना को परास्त कर लौट रहे हैं तो युधिष्ठिर ने कहा– ''देखा महाराज! मैं, न कहता था कि वृहन्नला के

रहते राजकुमार उत्तर का कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता, आखिर विजयी होकर लौट रहे हैं ये लोग।''

पुत्र की विजय के समाचार से राजा विराट की प्रसन्नता का कोई ठिकाना न रहा, शरीर रोमांचित हो गया। आदेश दिया– ''जाओ गाजे-बाजे के साथ राजकुमार का भव्य स्वागत करते हुए हाथी पर उनकी विजय यात्रा का प्रबंध किया जाए और बड़े सम्मान के साथ विजयी कुमार की अगवानी की जाए।''

यह कहकर राजा ने सैरंध्री को आदेश दिया– ''जाओ पासे ले आओ।''

कंक बने युधिष्ठिर के साथ राजा ने जुआ खेलना प्रारंभ कर दिया।

राजा तो उत्साहित थे ही, वह उसकी प्रफुल्लता में बोले– ''आज मेरे बेटे ने मेरा नाम ऊंचा कर दिया, कौरवों पर विजय पाकर कुल का गौरव बढ़ा दिया।''

''जी महाराज! भला क्यों नहीं, जब वृहन्नला सारथी हो तो विजय तो होनी ही थी।''

राजा ने पुत्र की विजय में बार-बार युधिष्ठिर के मुंह से वृहन्नला का नाम सुनकर खीझते हुए पासे युधिष्ठिर के मुंह पर दे मारे।

युधिष्ठिर की नाक से खून आ गया। पहले तो उन्होंने उसे अंजुलि में ले लिया, जब वस्त्र रक्त से डूब गया तो सैरंध्री को देखा।

वह महाराज युधिष्ठिर का संकेत समझ गई और सोने का जल भरा कटोरा ले आई। उसने सारा रक्त उस कटोरे में ले लिया।

इसी बीच राजकुमार के आने का समाचार मिला तो युधिष्ठिर ने संकेत किया कि राजकुमार पहले अकेले आएं, वृहन्नला कुछ देर बाद आये। युधिष्ठिर यह जानते थे कि यदि अर्जुन इस समय यहां आ जाएगा तो रक्त देखकर वह राजा विराट के प्राण ले लेगा और नगर का सेना सहित विध्वंस कर देगा।

यह सोचकर ही उन्होंने द्वारपाल को यह संकेत किया था।

राजकुमार उत्तर अकेले ही वहां आए। पहले पिता को प्रणाम किया और फिर कंकजी को प्रणाम किया।

उत्तर ने जब देखा कि कंकजी की नासिका से रुधिर बह रहा है तो वह बेचैन हो उठा, सैरंध्री कंकजी की सेवा कर रही थी।

उत्तर ने बड़ी उतावली में अपने पिता से पूछा– ''इन्हें किसने मारा है, यह पाप किसके हाथों हो गया है?''

विराट ने कहा– ''इसे मैंने ही मारा है, यह बड़ा कुटिल है। जितना आदर इसका किया जाता है, यह उतने आदर के योग्य नहीं है। तुम्हारे शौर्य की प्रशंसा में बार-बार यह वृहन्नला को श्रेय देकर तुम्हारे श्रेय को कम करके आंक रहा था, इसीलिए मैंने क्रोध में आकर इसके मुंह पर पासे दे मारे।''

''महाराज! आपने अनर्थ कर डाला है, इन्हें शीघ्र प्रसन्न कीजिए वरना ब्राह्मण का क्रोध आपको समूल नष्ट कर देगा।''

पुत्र से इस प्रकार सुनकर राजा विराट ने कंक से क्षमा याचना की।

यह देखकर कंक बने युधिष्ठिर ने कहा– ''राजन! क्षमा का व्रत तो मैंने चिरकाल से ले रखा है, मुझे तो क्रोध आता ही नहीं। हां, नाक से निकला रक्त यदि पृथ्वी पर गिर पड़ता तो इसमें कोई संदेह नहीं कि राज्य के साथ ही तुम्हारा भी विनाश हो जाता। मैंने अपना रक्त इसीलिए पृथ्वी पर नहीं गिरने दिया।''

कुछ देर बाद वृहन्नला ने अंदर प्रवेश किया। युधिष्ठिर पुनः स्वस्थ रूप में आ गए थे। वृहन्नला ने विराट और युधिष्ठिर को प्रणाम किया।

विराट ने अर्जुन के सम्मुख ही उत्तर की प्रशंसा शुरू कर दी।

यह सुनकर उत्तर ने कहा– ''महाराज! यह मेरी विजय नहीं, यह कार्य तो एक देवकुमार ने किया है। मैं तो डरकर भाग खड़ा हुआ था, किन्तु उस देवपुत्र ने मुझे लौटाया और स्वयं ही उसने रथ पर बैठकर कौरवों को बुरी तरह परास्त करके भगा दिया तथा राज्य का गौधन वापस लौटाया है।''

''वह महाबाहु वीर देवपुत्र कहां है, मैं उसे देखना चाहता हूं।'' तो उत्तर ने कहा– ''वह तो अपना कर्तव्य पूरा करके वहीं अंतर्धान हो गया। कल-परसों तक स्वयं ही दर्शन देगा।'' उत्तर का यह संकेत अर्जुन के ही विषय में था, पर नपुंसक वेश में होने के कारण विराट उसे पहचान न सके।

वृहन्नला ने युद्ध से आए सारे कपड़े राजकुमारी उत्तरा को दे दिये।

तीन दिन पश्चात् जब भरी सभा में विराट पधारे तो उन्होंने पांचों सेवकों को राजकीय वस्त्रों में उच्चासन पर विराजमान देखा तो उनका माथा ठनका और क्रोध हो आया कि मेरे ही अनुचर मेरे राज्य दरबार में बिना मेरे स्थान बताए उच्चासन पर विराजमान हैं।

राजा ने जब कंक के पास आकर कहा– ''तुम तो पासे फेंकते थे, आज बन-ठनकर राजाओं के योग्य सिंहासन पर कैसे बैठ गए?''

अर्जुन ने इस समय भरी सभा में कहा– ''महाराज! तुम्हारे सिंहासन की तो बात ही क्या, ये तो इंद्र के भी आधे आसन पर बैठने के अधिकारी हैं, इन्हें ठीक से पहचान लीजिए। ये कुंतीनंदन पाण्डु के ज्येष्ठ पुत्र महाराज युधिष्ठिर हैं जो अज्ञातवास की एक वर्ष की अवधि में आपके यहां कंक रूप में रहे। वह अवधि अब समाप्त हो गई है, अब हम सभी पांचों भाई स्वतंत्र हैं।''

शेष सभी का परिचय देते हुए अर्जुन ने बताया– ''तुम्हारे दुष्ट दुराचारी सेनापति का वध किसी और ने नहीं, तुम्हारे रसोई में काम करने वाले बल्लव ने किया, यही महाबली भीम है। मैं वृहन्नला अर्जुन हूं राजन! शेष दो अस्तबल तथा गौशाला में काम करने वाले मेरे दोनों अनुज नकुल-सहदेव हैं और महल में रानी की सेवा में रहने वाली वह देवी सैरंध्री हमारी प्राणप्रिया

पांचाली द्रौपदी है। कहिए– आपको अब भी कोई संदेह है तो उसे दूर किया जाए।'' और अर्जुन ने अपने धनुष की डोरी से टंकार की तो एक बार को राजदरबार की सारी धरती ही दहल गई।

महाराज विराट ने जब अर्जुन के मुख से यह रहस्य जाना तो वे पश्चाताप की मुद्रा में युधिष्ठिर से क्षमा मांगने लगे।

राजकुमार उत्तर के परामर्श से अपना सारा राज्य महाराज युधिष्ठिर को सौंप दिया और अर्जुन को गले से लगा लिया।

विराट ने इस संबंध को अपना सौभाग्य मानते हुए अपनी पुत्री उत्तरा के विवाह का प्रस्ताव अर्जुन से किया। विनम्र अर्जुन ने महाराज विराट की ओर देखते हुए कहा– ''महाराज! मैं आपकी कन्या का गुरु रहा हूं, अत: शिष्या के नाते वह मेरी पुत्री समान है, आप चाहें तो मेरे पुत्र अभिमन्यु से उसका पाणिग्रहण हो सकता है।''

महाराज विराट की पुत्री उत्तरा का अभिमन्यु से विवाह हो गया। वनवास की अवधि दुर्योधन की शर्त के अनुसार पूरी तरह बीत गई।

कौरव कुल के वीर पांचों पाण्डव अभिमन्यु का विवाह करके अत्यंत प्रसन्न थे। राजा विराट की सभा में कृष्ण, बलराम, सात्यकि, द्रुपद आदि के साथ महाराज विराट और पाण्डव बंधु बैठे हुए थे।

शकुनि ने जिस कूटनीति से द्यूतक्रीड़ा के बहाने युधिष्ठिर का राज्य छीन लिया था, उसी को पुन: प्राप्त करने के लिए विचार-विमर्श होने लगा। सभी के परामर्श से यह तय किया गया कि मित्रों के पास दूत भेज दिए जाएं, जिससे वे सभी अपनी सेना के साथ तैयार होकर साथ देने के लिए समय पर आ सकें, क्योंकि युद्ध तो होना ही है, दुर्योधन शांति से राज्य नहीं देगा।

महाराज धृतराष्ट्र के पास यह संदेश भिजवा दिया गया कि अब नियमानुसार पाण्डव वनवास तथा अज्ञातवास की अवधि पूरी कर चुके हैं, उनका राज्य उन्हें सौंप दिया जाए। यदि मोहवश

और दुर्योधन के अभिमानवश यह स्वीकार्य नहीं होता तो फिर गाण्डीवधारी अर्जुन के कोप का भाजन तो उन्हें बनना ही पड़ेगा।

कुपित होने पर अर्जुन इनके सगे-संबंधियों सहित इन्हें नष्ट-भ्रष्ट कर देगा।

यह नीति निर्धारित करके कृष्ण द्वारिका लौट गए। हस्तिनापुर की ओर महाराज द्रुपद के पुरोहित जी को भेज दिया गया। जहां-तहां पाण्डवों ने मित्र राजाओं के पास अपने दूत भेज दिए।

कृष्ण को विधिवत निमंत्रित करने के लिए स्वयं अर्जुन गए। दुर्योधन भी संयोग से उसी समय कृष्ण के पास सहायतार्थ द्वारिका पहुंचा हुआ था।

दुर्योधन जब कृष्ण के समीप पहुंचा तो उस समय कृष्ण सो रहे थे, वह उनके सिरहाने जाकर खड़ा हो गया। अर्जुन पहुंचा तो उन्हें पहले मन-ही-मन कृष्ण को प्रणाम किया और फिर भक्तिभाव से उनके चरणों के समीप ही खड़ा हो गया।

जागने पर भगवान कृष्ण ने दुर्योधन से पूर्व अर्जुन को देखा। कृष्ण ने कहा– ''एक ओर मेरी एक अरब सैनिकों की विशाल सेना है, एक ओर मैं, और मैं युद्ध में हथियार नहीं उठाऊंगा। पहली बारी अर्जुन की है, पहले उसी पर मेरी दृष्टि गई है और वह छोटा भी है। अर्जुन ने कहा– ''वासुदेव! आपसे मेरा यही निवेदन है कि आप मेरी सहायता करें। मैं सेना और आपमें से आपको चुनता हूं।''

दुर्योधन को यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई। वह ऐसे कृष्ण को लेकर क्या करता जो युद्ध में हथियार ही नहीं उठाएगा, उसने कृष्ण की एक अरब सैनिकों वाली सेना प्राप्त करके अपने भाग्य को सराहा और फूला हुआ अपने राज्य में लौट आया।

दुर्योधन के लौटने पर कृष्ण ने कहा– ''अर्जुन! मैं लड़ूंगा तो नहीं, फिर तुमने मुझे मांगकर क्या लिया?''

''मैं जानता हूं वासुदेव! जिस पर आपकी कृपा होती है, वह अजेय है। मेरे मन में सदा यही इच्छा रही है कि मेरे रथ को आप रास्ता दिखाएं। आप ही मेरा रथ हांकें, मेरे सारथी बनें। प्रभु आप जिसके सारथी बनेंगे, वह भला त्रिलोक में किसी से हार सकता है। आपकी सेना भी आपके प्रताप और कृपा के बिना पंगु है।''

कृष्ण ने प्रसन्न होकर अर्जुन की बात स्वीकार कर ली और अर्जुन को सब तरह से आश्वस्त करके विदा किया।

युद्ध का प्रारंभ और अर्जुन का मोह

पितामह भीष्म तो मनुष्य देवता, गंधर्व और असुरों द्वारा की जाने वाली व्यूह रचना भी जानते थे, दुर्योधन के पक्ष में ग्यारह अक्षौहिणी सेना की व्यूह रचना स्वयं भीष्मजी ने की।

कौरवों की सेना की व्यूह रचना को देखकर युधिष्ठिर ने अर्जुन से कहा– ''भैया! महर्षि बृहस्पति के कथानुसार यदि शत्रु पक्ष की सेना कुछ बड़ी हो और अपनी अपेक्षाकृत कुछ थोड़ी, तो उसे समेटकर थोड़ी दूर ही रखना चाहिए। जब थोड़ी सेना को अधिक बड़ी सेना से युद्ध करना पड़े तो उसके लिए सूचीमुख नामक व्यूह की रचना करनी चाहिए, तुम इसमें पारंगत हो, अत: व्यूह रचना तुम्हीं करो।''

युधिष्ठिर से इस प्रकार आदेश पाकर अर्जुन ने स्वयं अपनी सात अक्षौहिणी सेना के व्यूह रचना का दायित्व संभाला। इसके लिए समयानुकूल अर्जुन ने वज्र नामक दुर्भेद्य व्यूह की रचना की। यह इंद्र का वह दुर्जय व्यूह है जिससे राक्षस भी हार मान गए थे।

''भीमसेन व्यूह में हमारे अग्रभाग में रहेंगे। वे प्रबल योद्धा हैं, वायु के समान गति वाले हैं।'' ऐसा कहते हुए अर्जुन ने व्यूह रचना और सेना को व्यूहाकार में खड़ी करके शीघ्र ही शत्रुओं की ओर बढ़ गया।

कौरवों को अपनी ओर आते देखकर पाण्डव सेना भी जल से भरी गंगा के समान धीरे-धीरे आगे बढ़ती दिखाई देने लगी। भीम, धृष्टद्युम्न, नकुल, सहदेव और धृष्टकेतु सेना के आगे चल रहे थे। इनके पीछे राजा विराट, अपने भाई, पुत्र और एक अक्षौहिणी सेना के साथ रक्षा कर रहे थे। इनके पीछे द्रौपदी के पांचों पुत्र और अभिमन्यु नियुक्त थे। इन सबके पीछे शिखण्डी था जो अर्जुन की रक्षा में रहकर भीष्मजी के लिए तैयार था। अर्जुन के पीछे महाबली सात्यकि, युधामन्यु, उत्तमौजा थे।

यह व्यूह भय की आशंका से मुक्त था किन्तु युधिष्ठिर को अभी भी पितामह भीष्म के महारथी व्यक्तित्व से भय लग रहा था।

यह देखकर अर्जुन ने कहा– ''महाराज! आपका भय और विषाद निर्मूल है, वासुदेव की अपार शक्ति आपके साथ है, देवगणों द्वारा प्रदत्त दिव्यास्त्र मेरे पास हैं, आप केवल प्रारंभ का बिगुल बजाइए, फिर देखिए हमारा उत्साह राज्य सिंहासन के कितना निकट पहुंच जाएगा।''

अर्जुन की कृष्ण पर इस अपार भक्ति को देखकर मनुष्यों पर दया करने वाली देवी भगवान कृष्ण के सामने आकाश से प्रकट हुई तथा कहने लगीं– ''पाण्डुनंदन! तुम थोड़े ही दिनों में शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर लोगे। तुम तो साक्षात नर हो अर्जुन! नारायण तुम्हारे सहायक हैं। तुम्हें कोई नहीं दबा सकता। युद्ध में तुम वज्रधारी इंद्र के लिए भी अजेय हो।''

अर्जुन को यह वर देकर वह वरदायिनी शक्ति अंतर्धान हो गई। यह वर पाकर अर्जुन को और अधिक विश्वास हो गया। उसे लगा,आज तो समस्त दैवी शक्ति उनके पक्ष में हैं, फिर भय किसलिए।

युधिष्ठिर को संबोधित करते हुए अर्जुन ने कहा– ''राजन! जहां धर्म है, वहां द्युति और कांति है, जहां लज्जा है वहां ही लक्ष्मी और सुबुद्धि है। इसी प्रकार जहां धर्म है वहीं कृष्ण हैं और जहां कृष्ण हैं, वहीं विजय है।''

युधिष्ठिर से तो अर्जुन ने ये उत्साही वचन कह दिए, किन्तु जैसे ही उसने सिर उठाकर कौरव सेना की ओर दृष्टि उठाई, वह भीतर से कांप उठा। वह यकायक धर्मभीरू होने लगा, गाण्डीव पर हाथ ढीले पड़ गए। चेहरे का रंग विवर्ण हो गया और अचानक ही वह अपना सिर पकड़कर बैठ गया।

युद्धक्षेत्र में डटे हुए युद्ध के अभिलाषी इस स्वजन समुदाय को देखकर वह कृष्ण से बोला– ''वासुदेव! हमें ऐसे राज्य को पाकर क्या मिलेगा। जिसे पाने के लिए इतना बड़ा स्वजन समुदाय मृत्यु का वरण करेगा। हमारे गुरु, पितामह, नाते-रिश्तेदार, ये सभी संबंधी– इनके प्राणों का हरण करके यह राज्य लेकर हम क्या करेंगे। नहीं वासुदेव! यह तो अनर्थ हो जाएगा।

''इतना भीषण हत्याकाण्ड केवल मात्र सिंहासन के लिए अनुचित है। ये लोग लोभ के वशीभूत अहंकार में डूबे हैं तो क्या हमें भी इनके समान ही विवेकहीन हो जाना चाहिए? नहीं मधुसूदन! मेरे शरीर में इस भयानक अनिष्ट की कल्पना करके ही रोमांच हो रहा है। मेरे अस्त्र इन पर नहीं चल पाएंगे।''

अचानक इस प्रकार अर्जुन को मोह में फंसा देखकर कृष्ण ने उसे कहा– ''तुम्हारा असमय यह मोहग्रस्त होना, श्रेष्ठ पुरुषों के आचरण के प्रतिकूल है अर्जुन! तुम क्षत्रिय हो, नपुंसक मत बनो। हृदय की इस तुच्छ दुर्बलता को त्यागकर युद्ध के लिए सन्नद्ध हो जाओ।''

''किन्तु मैं रणभूमि में पितामह से, गुरु द्रोण से, कृपाचार्य से, कैसे लड़ पाऊंगा? जिनकी गोद में खेला हूं, जिनसे शिक्षा ली है, उन पर अस्त्र कैसे चला पाऊंगा? ये तो मेरे पूजनीय हैं, हे वासुदेव! मुझे कुछ नहीं सूझ रहा है, कृपया बताइए, मैं क्या करूं?''

''तुम शोक त्याग कर अपना धर्म पूरा करो। इस समय क्षत्रिय के लिए धर्मयुक्त युद्ध से बढ़कर कोई दूसरा कल्याणकारी कर्तव्य नहीं है और यदि तुम ऐसा नहीं करते तो इससे जो अपकीर्ति तुम्हें मिलेगी वह दीर्घकाल तक तुम्हें दहेगी। इसलिए भौतिक शरीर को दृष्टि में रखकर तुम्हारी आसक्ति निराधार है। जीव जन्म लेता ही कर्म के लिए है, उसे एक दिन जाना होता है, व्यक्ति तो मात्र निमित्त होता है। इनके अंत का भी समय आ गया है, यह युद्ध और तुम तो मात्र निमित्त हो।

''हे धनंजय! जिसने कर्मयोग की विधि से सब कर्मों का परमात्मा में अर्पण कर दिया है, ऐसे स्वाधीन अंत:करण वाले पुरुष को कर्म नहीं बांधते इसलिए भरतवंशी अर्जुन! तू हृदय में स्थित इस अज्ञानजनित अपने संशय का निवारण कर और विवेक से छेदन करके समत्व रूप कर्मयोग में स्थित हो जा और जा युद्ध के लिए तत्पर होकर कर्तव्य पूरा कर।

''जो योगी अपनी भांति संपूर्ण भूतों में सम देखता है और सुख अथवा दु:ख को भी समय देखता है, वही परम श्रेष्ठ है। तुम्हारा भी इस समय यही कर्तव्य है कि तुम सम भाव से युद्ध

करो।

''और यह रहस्य भी जान लो, तुमने मेरी एक अरब सेना को छोड़कर मुझे चुना था, मेरी शक्ति और माया भी जानते हो। अपनी योगमाया से छिपा मैं कभी प्रत्यक्ष नहीं होता, इसीलिए अज्ञानी जनसमुदाय मुझे जन्म रहित अविनाशी नहीं मानता, दुर्योधन ने भी सेना का चुनाव करते समय यही सोचा था और मूर्खता की थी।

''पूर्व में व्यतीत हुए और वर्तमान में स्थित तथा आगे होने वाले सब भूतों को मैं जानता हूं, किन्तु श्रद्धा भक्ति रहित कोई भी पुरुष मुझे नहीं जानता। हे भरतवंशी अर्जुन! संसार में इच्छा और द्वेष से उत्पन्न सुखादि द्वंद्व, रूप मोह से संपूर्ण प्राणी अत्यंत अज्ञता को प्राप्त हो रहे हैं किन्तु निष्काम भाव से श्रेष्ठ कर्मों का आचरण करने वाले, जिन पुरुषों का पाप नष्ट हो गया है, वे राग-द्वेष जनित रूप मोह से दृढ़ निश्चयी भक्त मुझको सब प्रकार भजते हैं। जो मेरे शरीर होकर जन्म और मरण से छूटने का यत्न करते हैं, वे पुरुष उस ब्रह्म को संपूर्ण अध्यात्म की संपूर्ण कर्म को अधिभूत, अधिदेव सहित, अधियज्ञ सहित मुझ समग्र को जानते हैं।

''पार्थ! यह नियम है कि परमेश्वर के ध्यान के अभ्यास से, कर्मयोग से युक्त, दूसरी ओर न जाने वाले पुरुष चित्त से निरंतर चिंतन वाले, परम प्रकाशवान परमेश्वर को ही प्राप्त करते हैं।

''अर्जुन! जो पुरुष मुझमें अनन्य चित्त होकर सदा ही निरंतर मुझ पुरुषोत्तम का स्मरण करता है, उस नित्य निरंतर मुझ में युक्त हुए योगी के लिए मैं सर्वदा सुलभ हूं, परम सिद्धि को प्राप्त महात्माजन मुझको प्राप्त कर दु:खों के घर एवं क्षण भंगुर इस संसार में फिर नहीं लौटते।

''कुंती पुत्र! मुझको प्राप्त होकर पुनर्जन्म नहीं होता है, क्योंकि मैं कालातीत हूं।

''हे वीर धनुर्धारी! जिस काल में शरीर त्याग कर गए हुए योगीराज वापस न लौटने वाली गति को और जिस काल में गए हुए वापस लौटने वाली गति को ही प्राप्त करते हैं, उस काल को उन दोनों मार्गों को कहूंगा जिस मार्ग का देवता– अग्नि अभिमानी है, उसमें मरे हुए ब्रह्म वेत्रायोगी जन उपर्युक्त देवताओं द्वारा क्रमश: ले जाए जाकर ब्रह्म को प्राप्त करते हैं। जिस मार्ग

का धूमाभिमानि देवता है, रात्रि अभिमानी देवता है, उस मार्ग में मरकर गया जीवन सकाम कर्म करने वाला योगी चंद्रमा की ज्योति को प्राप्त करता है। स्वर्ग में अपने शुभ कर्मों का फल प्राप्त करके वापस आता है।

इस प्रकार इन दोनों मार्गों को तत्व से जानकर कोई भी योगी मोहित नहीं होता। इस कारण अर्जुन! तू सब काल में समत्व बुद्धि रूप योग से युक्त हो, योगी पुरुष इस रहस्य को तत्व से जानकर वेदों को पढ़ने में तथा यश-तप, दानादि करने में जो पुण्य फल प्राप्त होता है, उन सबका उल्लंघन कर जाता है तथा सनातन परम पद प्राप्त करता है।

मैं तुझे बताता हूं, मैं वासुदेव ही संपूर्ण जगत की उत्पत्ति का कारण हूं। मुझसे ही सारा जगत चेष्टा करता है। निरंतर मुझमें मन लगाने वाले, मेरी भक्ति करने वाले, मेरे गुण कर्ण प्रभाव को जानने वाले निरंतर संतुष्ट रहते हैं। मेरे विस्तार का कोई अंत नहीं है।

मैं एकादश रुद्रों में शंकर हूं, यक्ष में कुबेर मैं हूं, शिखर पर्वतों में मैं सुमेरु हूं, पुरोहितों में उनके मुखिया बृहस्पति मुझको ही जान। सेनापतियों में स्कंद, जलाशयों में समुद्र हूं। शब्दों में ओंकार और महर्षियों में भृगु मैं ही हूं।

वृष्णिवंशियों में मैं स्वयं तेरा सखा, पाण्डवों में तू मेरा ही रूप है, मुनियों में वेदव्यास, कवियों में शुक्राचार्य, दमन करने वालों में दण्ड, जीतने की इच्छा रखने वालों में नीति, गुप्त रहस्यों का मौन, ज्ञानियों का तत्वज्ञान मैं ही हूं। मेरी दिव्य विभूतियों का अंत नहीं है।

मैं इस संपूर्ण जगत को अपनी योग शक्ति के एक अंश मात्र से धारण करके स्थित हूं।

मेरा जो चतुर्भुज रूप तुमने देखा है अर्जुन! यह जन सामान्य के लिए ही नहीं, बड़े-बड़े मुनियों, तपस्वियों के लिए भी दुर्लभ है, अत: तू संशय छोड़कर कर्म की ओर अग्रसर हो धनंजय!

हे अर्जुन! इस देह में जीवात्मा मेरा ही सनातन अंश है और वही इन त्रिगुणमयी माया में स्थित मन और पांचों इंद्रियों का आकर्षण करता है। वायु गंध के स्थान से गंध को जैसे ग्रहण करके ले जाता है, वैसे ही देहादि का स्वामी जीवात्मा भी जिस शरीर को त्याग देता है, उससे इस मन सहित इंद्रियों को ग्रहण करके फिर जिस शरीर को प्राप्त होता है, उसमें जाता है।

सूर्य में स्थित जो तेज संपूर्ण जगत को प्रकाशित करता है, जो तेज चंद्रमा में है, अग्नि में, उसको तू मेरा ही तेज जान। मैं ही पृथ्वी में प्रवेश करके अपनी शक्ति से सब भूतों को धारण करता हूं।

भय का सर्वथा त्याग, अंत:करण की पूर्ण निर्मलता, तत्वज्ञान के लिए ध्यान योग में निरंतर दृढ़ स्थिति और सात्विक दान, गुरुजनों की पूजा, अग्निहोत्र आदि उत्तम कर्म, शुद्धाचरण, पठन-पाठन, स्वधर्म पालन, मन-वाणी- कर्म से किसी को भी कष्ट न देना, यथार्थ और प्रिय भाषण – ये सब अर्जुन! दैवी संपदा को प्राप्त पुरुष के लक्षण हैं।

दम्भ, घमण्ड, अभिमान, क्रोध, कठोरता और अज्ञान – ये सब आसुरी संपदा को लेकर उत्पन्न हुए पुरुष के लक्षण हैं। दैवी संपदा मुक्ति के लिए, आसुरी संपदा बांधने के लिए मानी गई है।

इसलिए हे अर्जुन! तू शोक न कर क्योंकि तू तो दैवी संपदा को प्राप्त पुरुष है। मेरे प्रिय सखा! इस संसार में दो ही प्रकृति के पुरुष तो होते हैं – दैवी संपदा संपन्न तथा आसुरी संपदा संपन्न। जो आसुरी प्रवृत्ति वाले होते हैं उनका नाश करने में कोई अहित नहीं होता है। ये सभी अपने कर्म फल के अनुसार सुख-दु:ख भोगते हैं।

हे पार्थ! क्या मेरा द्वारा कहे गए इस उपदेश को तूने एकाग्रचित होकर श्रवण किया है? और क्या तेरा अज्ञानजनित मोह टूट गया है?''

अर्जुन ने कहा– ''हे अच्युत! आपकी कृपा से मेरा मोह भंग हो गया है। मैंने ज्ञान पा लिया है, अब मैं कर्म के प्रति सन्नद्ध हो गया हूं। संशय रहित आपकी आज्ञा का पालन करने को

कटिबद्ध हूं।''

और इस प्रकार एक तेजहीनता के अंधकार से ग्रस्त कर्मयोगी प्रकाशमान होकर फिर से अपने गाण्डीव को संभालकर टंकार करने लगा।

प्रत्यंचा की टंकार ने दिशाओं में हलचल मचा दी। आकाश में इंद्रादि सभी देवों ने प्रसन्नता प्रकट करते हुए उन्हें आशीर्वाद दिया।

दैवी संपदा संपन्न व्यक्तित्व का, आसुरी संपदा संपन्न समूह से टकराव निश्चित हो गया। विजय तो धर्म की ही होनी तय है।

युद्ध के लिए तत्पर अर्जुन और भीष्म वध

कृष्ण के द्वारा प्रवोचित होकर अर्जुन ने अपना गाण्डीव उठा लिया और चारों ओर दृष्टि दौड़ाने पर उन्हें अब आसुरी संपदा से संपन्न शत्रु-ही- शत्रु दिखाई देने लगे। देवों को प्रणाम करते हुए अर्जुन ने तब एक आकाश बाण छोड़कर चारों ओर युद्ध की गर्जना कर दी। इस गर्जना को सुनकर शत्रुपक्ष के अधिकांश वीरों तथा सैनिकों के दिल दहल गए।

पितामह भीष्म अपने पौत्र के कौशल से परिचित भी थे और उन्हें विश्वास भी था कि यह अद्भुत वीर कुरुकुल की कुल ज्योति को प्रदीप्त करेगा, इसलिए अर्जुन के प्रणाम बाण को अपना आशीर्वाद देने के लिए भीष्म ने भी गगनभेदी गर्जना से उसे आशीष दिया।

भीष्म और अर्जुन आपस में मानो अब अपने शौर्य पराक्रम और शक्ति का परीक्षण करने लगे, दोनों में घमासान बाण वर्षा होने लगी।

अर्जुन अपना जगत विख्यात गाण्डीव लेकर भीष्म पर टूट पड़े। ऐसा लगने लगा आज का युद्ध भीष्म और अर्जुन में निर्णायक होकर रहेगा।

भीष्म के बाणों को देखकर अर्जुन क्रोध में भरकर और अधिक प्रभावकारी प्रलयकारी बाण छोड़ते थे, किन्तु पितामह उसे बालक जानकर मंद-मंद मुस्कराते हुए तुरंत उसका प्रतिकार कर देते थे।

भीष्म उन्हीं परशुराम के शिष्य थे, जिन्होंने इक्कीस बार पृथ्वी को क्षत्रिय विहीन कर दिया था, लेकिन जब वे अम्बा की सहायतार्थ भीष्म को परास्त करने आए थे तो शिष्य भीष्म के सम्मुख उन्हें भी झुकना पड़ा था। ऐसे परम पराक्रमी रणकौशल विशारद भीष्म आज अर्जुन के रणकौशल पर मुग्ध भी हो रहे थे, उसे छका भी रहे थे।

भीष्म ने अर्जुन को पहले दिन ही बाणों से बींध डाला, किन्तु अर्जुन भी टस-से-मस नहीं हुआ, वीर की भांति उनके सामने डटा रहा।

चारों ओर ही भयानक प्रलयकारी युद्ध हो रहा था। कौशलराज बृहद्वल से अभिमन्यु भिड़ा था, भीमसेन दुर्योधन से भिड़ा हुआ था, नकुल दु:शासन से टक्कर ले रहा था। महाराज युधिष्ठिर स्वयं शल्य से मोर्चा ले रहे थे। महाराज द्रुपद ने जयद्रथ को घेर रखा था।

उस समय सभी वीर ऐसे उन्मत हो रहे थे कि कोई किसी को पहचान ही नहीं रहा था। हाथी के साथ हाथी, रथी के साथ रथी, घुड़सवार के साथ घुड़सवार, पैदल के साथ पैदल भिड़े हुए थे।

ऐसा जान पड़ता था मानो वे भूतों से आविष्ट होकर युद्ध कर रहे हैं। इस प्रकार जब संग्राम मर्यादाहीन और भयानक हो गया तो भीष्म के सामने पड़ते ही पाण्डवों की सेना थर्रा उठी।

प्रतिदिन नए उत्साह से युद्ध होता था, प्रतिदिन ही असंख्य सैनिक, वीर, रथी, महारथी मृत्यु को प्राप्त होने लगे। पाण्डवों की सेना का भीषण विनाश हो गया।

यह दशा देखकर पाण्डव पक्ष के वीर घबरा उठे। दसवें दिन, भीष्म को बिना परास्त किए युद्ध की दशा नहीं बदलेगी, यह जानकर अर्जुन ने अपने रथ पर शिखण्डी को खड़ा कर दिया और अपने सामने शिखण्डी को खड़ा देख भीष्म ने उस पर वार नहीं किया। यही अवसर था अर्जुन के लिए– भीष्म शिखण्डी पर अस्त्र चलाएंगे नहीं, ऐसे में वे अर्जुन के बाणों का प्रतिकार भी नहीं कर पाएंगे, यह सोचकर अर्जुन ने लगातार अनेक बाणों से महाराज भीष्म की पताका, रथ का पहिया, घोड़ा सभी नष्ट कर दिए। एक ही बाण से उनके धनुष की प्रत्यंचा काट दी और बाणों से भीष्म का शरीर छलनी करके उन्हें भूमि पर अचेत गिरने के लिए बाध्य कर दिया।

शिखण्डी ने स्वयं भीष्म की छाती में अनेक बाण मारे। इस प्रकार भीष्म को हतोत्साहित देखकर कृष्ण ने अर्जुन से कहा– ''धनंजय! देखो शांतनुनंदन भीष्मजी दोनों सेनाओं के बीच खड़े हैं, अब तुम जोर लगाकर इनका वध करो, तभी तुम्हारी विजय होगी।''

भगवान की प्रेरणा से अर्जुन ने उस समय इतनी बाण वर्षा की कि पितामह रथ विहीन निरीह से लगने लगे किन्तु अभी भी भीष्म ने हार नहीं मानी। अर्जुन के बाणों के उन्होंने टुकड़े-टुकड़े कर दिए।

तब शिखण्डी अपने उत्तम अस्त्रों को लेकर बड़े वेग से भीष्म की ओर दौड़कर आया। अर्जुन उस समय शिखण्डी की रक्षाकर रहे थे क्योंकि केवल भीष्म ही का तो ये प्रण था कि वे नपुंसक पर बाण नहीं चलाएंगे, किन्तु शेष सभी कौरव महारथी शिखण्डी को ही मारने पर उद्धत थे।

इसके बाद तो सात्यकि, चेकितान, द्रुपद, विराट, धृष्टद्युम्न, सहदेव, अभिमन्यु आदि ने भीष्मजी पर बाण वर्षा करनी प्रारंभ कर दी।

भीष्म इससे भी तनिक नहीं घबराए। वे योद्धाओं को बाणों सहित पीछे धकेलते हुए पाण्डवों की सेना के बीच में ही घुस गए। ऐसा लगा मानो अभी भी वे खेल कर रहे हों और अपने शस्त्रों का उच्छेदन करने लगे। शिखण्डी के स्त्री स्वभाव को देखकर वे बार-बार मुस्करा पड़ते थे। उस पर बाण नहीं मारते थे।

ऐसा देखकर, अवसर पाकर अर्जुन शिखण्डी को आगे करके भीष्म के सम्मुख पहुंच गया। अब भीष्म चारों ओर से घिर गए और अब तो उनकी फेंकी शक्ति भी अर्जुन के द्वारा काट दी गई।

भीष्म को लगने लगा, कृष्ण यदि पाण्डवों की सुरक्षा न कर रहे होते तो वे इन सभी को नष्ट कर चुके होते। पाण्डव तो वैसे भी भीष्म के लिए अवध्य थे। भीष्म अशक्त होकर धराशायी हो गए।

भीष्म को स्मरण हो आया जिस समय पिता शांतनु ने माता सत्यवती से विवाह किया था, उस समय दो वर दिए थे, युद्ध में कोई भी तुम्हें मार नहीं सकेगा, तुम अपनी इच्छा से ही मरोगे।

भीष्म के इस पराभव पर आकाश से देवों ने कहा– ''तात! तुम अपनी इच्छा से ही यह शरीर त्यागोगे।'' यह जानकर भीष्मजी ने स्वयं अर्जुन से युद्ध बंद कर दिया और दु:शासन से बोले– ''ये ब्रह्मदण्ड के समान भयंकर बाण मेरे मर्मस्थानों को विदीर्ण कर रहे हैं, अर्जुन के सिवा और किसी के बाण मुझे इतनी पीड़ा नहीं दे सकते।''

अर्जुन ने पितामह को युद्ध से उपराम होते देख युद्ध बंद कर दिया और मन-ही-मन उन्हें प्रणाम किया। मानो अपने दुष्कर्म की क्षमा याचना कर रहा हो।

सायंकाल का समय था। सभी लोग युद्ध के आतंक से राहत अनुभव करते हुए पितामह के शिविर में गए। उनकी गर्दन नीचे लटकी हुई थी। उन्होंने दुर्योधन से कहा– ''मेरी गर्दन को सहारा चाहिए, कोई प्रबंध करो।'' दुर्योधन ने बढ़िया गद्देदार तकिए मंगा दिए किन्तु भीष्म ने उन्हें ठुकरा दिया।

अर्जुन की ओर देखा तो उसने अपने गाण्डीव से तीन बाण धरती पर मारे जो उनका मस्तक बेधते हुए धरती में घुस गए।

भीष्म ने भयानक पीड़ा में भी हल्का-सा मुस्कुराकर कहा– ''मेरा आशय अर्जुन समझ गया।''

''अब वत्स मुझे प्यास लगी है, पानी और पिला दो।'' सभी लोगों ने प्रयत्न किया, किन्तु भीष्म के लिए वह जल स्वीकार नहीं था। तभी अर्जुन ने एक बाण धरती पर मारकर जलधारा प्रकट की जो सीधे भीष्म के मुख पर पड़ी और इस प्रकार पितामह की जल की प्यास मिटी। यह कार्य अर्जुन ही कर सका था।

जयद्रथ का वध

भीष्म के पराभव के पश्चात् कौरव पक्ष में आचार्य द्रोण को सेनापतित्व की बागडोर सौंपी गई।

द्रोण बड़े व्यवहार कुशल थे। उन्होंने दुर्योधन का मन पढ़ लिया कि यदि युधिष्ठिर को जीवित ही कैद कर लिया जाए तो उन्हें फिर से जुए में हराकर वन में भेज देंगे और बिना किसी खून-खराबे के हम जीत जाएंगे। वह मुस्कराए और कहने लगे अब जैसे भी बने तुम अर्जुन को युद्धक्षेत्र से हटा दो, अर्जुन के हार जाने पर धर्मराज तुम्हारे हाथ में आ जाएंगे।

धर्मराज को भी अपने गुप्तचरों से कौरवों की इस मंत्रणा का ज्ञान हो गया।

''अब किस नीति से काम लोगे अर्जुन?'' युधिष्ठिर ने कहा।

''हे राजन! जिस प्रकार मैं आचार्य का वध नहीं करना चाहता, उसी प्रकार आपसे दूर भी नहीं रहना चाहता, भले ही मुझे प्राणों से हाथ ही क्यों न धोना पड़े, किन्तु मेरे जीवित रहते आचार्य आपको कैद नहीं कर पाएंगे। अत: मेरे जीवित रहते आप लेशमात्र भी डरें।''

दूसरी ओर अर्जुन से सामना करने के लिए त्रिगर्त वीरों ने स्वयं को अर्जुन से लड़ने के लिए तैयार कर लिया, 'यदि वह हमारे बीच आ गया तो हम उसे अलग ले जाकर मारेंगे, ऐसा सोचते हुए उन्होंने प्रतिज्ञा की कि अब पृथ्वी पर या तो अर्जुन ही रहेगा या हम ही रहेंगे।'

ये पांचों भाई – सत्यरथ, सत्यवर्मा, सत्यव्रत, सत्येषु और सत्यकर्मा, अपने साथ दस हजार सैनिकों को ले युद्ध के लिए तत्पर हो गए।

उन्होंने अर्जुन को पुकारा। नियम के अनुसार अर्जुन उनकी पुकार पर आ गया और उनकी चुनौती स्वीकार करके युद्ध के लिए निकल पड़ा। सत्यजित को वह महाराज युधिष्ठिर की रक्षा का भार सौंपकर आगे बढ़ गया।

संशप्तकों ने एक चौरस मैदान में अपने रथों को चंद्राकार खड़ा करके मोर्चा लिया। जब उन्होंने अर्जुन को अपनी ओर आते देखा तो वे हर्ष में उछल पड़े।

अर्जुन ने मुस्कराकर कहा– ''वासुदेव! देखिए तो इन त्रिगर्त वीरों को किस प्रकार उन्मादित हो रहे हैं।'' ये लोग संख्या में इतने अधिक थे कि सायंकाल तक अर्जुन उन्हें मारते-मारते काफी थक गया। ये लोग कई बार बीच में भाग खड़े हुए, फिर आकर जम जाते। अर्जुन ने उनके साथ माया रची और विश्व कर्मास्त्र छोड़कर उन्हें भ्रमित कर दिया। अब वे लोग आपस में ही कृष्ण और अर्जुन को जानकर एक-दूसरे का वध करने लगे।

इस भीषण भ्रमजाल में कृष्ण ने पुकारकर कहा– ''अर्जुन! तुम कहां हो?''

यह सुनते ही अर्जुन ने वायव्यास्त्र छोड़ दिया। वायुदेव संशप्तक वीरों को अपने साथ ही उड़ाकर ले गया। वे सभी भयानक रूप से व्याकुल हो गए।

प्रलयकाल में जिस प्रकार भगवान रुद्र संहार लीला करते हैं, उसी प्रकार अर्जुन ने लीला करके इन संशप्तकों को खूब छकाया।

सारी भूमि ही उन संशप्तक वीरों की लाशों से लहूलुहान हो गई।

पीछे आचार्य द्रोण ने चक्रव्यूह की रचना को और कुमार अभिमन्यु जो व्यूह भेदन तो जानता था किन्तु व्यूह से निकलना नहीं जानता था, दुष्ट कौरवों की चाल का शिकार हो गया और सात महारथियों से अकेला जूझता हुआ मृत्यु को प्राप्त हुआ।

युधिष्ठिर तो अर्जुन की अनुपस्थिति में अनाहत रहे किन्तु अर्जुन के प्रिय पुत्र अभिमन्यु को ये चारों शेष पाण्डव नहीं बचा सके।

लौटने पर अर्जुन को अपने शिविर में एक मारक सन्नाटा देखने को मिला। वह सीधा महाराज युधिष्ठिर के पास गया, वहां आज युधिष्ठिर की भंगिमा देखने लायक थी। अर्जुन को अनिष्ट का संदेह लौटते समय ही हो गया था, तभी तो उन्होंने कृष्ण से कहा– ''केशव! न जाने क्यों आज

यह हृदय धड़क रहा है। सारा शरीर शिथिल हो रहा है। कोई अनिष्ट अवश्य हुआ है, यह बात हृदय से निकलती ही नहीं।

''पृथ्वी पर तथा संपूर्ण दिशाओं में होने वाले उत्पात मुझे डरा रहे हैं, मेरे भ्राता युधिष्ठिर अपने अनुजों तथा मंत्रियों सहित कुशल तो होंगे।''

कृष्ण ने कहा– ''शोक न करो, मंत्रियों सहित तुम्हारे भाई का कल्याण ही होगा। इस अपशकुन के अनुसार कोई दूसरा अनिष्ट हुआ होगा।''

शिविर के पास पहुंचते ही उन्हें अनिष्ट दर्शन हो गया, इस शिविर में मांगलिक बाजे नहीं बज रहे थे। सैनिक उन्हें देखकर मुंह नीचा करके इधर-उधर होने लगे।

भाई युधिष्ठिर को अत्यंत व्याकुल तथा हतोत्साहित देखकर अर्जुन विचलित हो गए। अपने भाइयों तथा अनुजों को इस प्रकार चिंतित देख अर्जुन ने कहा– ''आज आप सभी के मुख पर अप्रसन्नता दिखाई दे रही है। इधर मुझे अभिमन्यु भी नहीं दिखाई दे रहा है और आप भी खिन्न दिखाई पड़ रहे हैं, इसका क्या कारण है? मैंने सुना था आचार्य द्रोण ने चक्रव्यूह की रचना की थी। आप लोगों में से उस बालक अभिमन्यु के अतिरिक्त उस व्यूह का भेदन और कोई नहीं कर सकता था। अभिमन्यु भी उस व्यूह से निकलने का ढंग नहीं जानता था। कहीं ऐसा तो नहीं कि आपने उसे ही चक्रव्यूह भेदन के लिए भेज दिया हो। अभिमन्यु उस व्यूह के भेदन में मारा तो नहीं गया? आखिर आप चुप क्यों हैं? देवी द्रौपदी और सुभद्रा की आंखों को शीतलता प्रदान करने वाला, कृष्ण और मां कुंती का दुलारा अभिमन्यु क्या वीरगति को प्राप्त हो गया?''

युधिष्ठिर को इस प्रकार मौन देख और प्रतिकार में कुछ भी न कहते जान अर्जुन को निश्चय हो गया कि आज उसका कुलदीप उसकी अनुपस्थिति में दुष्ट और कुटिल कौरवों की चाल का शिकार हो गया।

विलाप करते हुए अर्जुन कहने लगे– ''हां, युद्ध का तो वह अभिनंदन करता था, शत्रु उसे देखते ही भयभीत हो जाते थे, वह आत्मीयजनों का प्रिय करने वाला और पितृवर्ग की विजय

चाहने वाला था। शत्रु पर उसने कभी पहले प्रहार नहीं किया। युद्ध में सदा निर्भीक रहता था।

''रथियों की गणना के समय जिसे महारथी गिना गया था, उस वीर अभिमन्यु का मुख देखे बिना अब मेरे हृदय को क्या शांति मिलेगी।''

अधिक दु:ख तो अर्जुन को सुभद्रा के लिए हो रहा था– ''वह बेचारी तो पुत्र वध के समाचार को सुनकर ही प्राण त्याग देगी। अभिमन्यु को न देखकर सुभद्रा तथा द्रौपदी क्या कहेंगी। मैं उन्हें क्या उत्तर दूंगा। कैसे तुष्ट करूंगा।

''यह हृदय वज्र का हो गया है, केशव! कुछ तुम ही मेरी सहायता करो, हां? मैं क्या करूं?

''कोई तो कुछ बोलो, मेरे प्रश्न का निवारण कोई नहीं करेगा? मैं इसी भांति विलाप करता रहूंगा? यह मेरे साथ इतना निष्ठुर व्यवहार क्यों– बोलो क्यों राजन!''

अर्जुन को पुत्र शोक से पीड़ित तथा उसकी याद में विलाप करते देख केशव ने उन्हें पकड़कर संभाला और कहा– ''मित्र! इतने आकुल न होवो। जो युद्ध में पीठ नहीं दिखाते उन सभी शूरवीरों को इसी मार्ग से जाना पड़ता है। जिनकी युद्ध से ही जीविका चलती है। उन क्षत्रियों का तो विशेषत: यही मार्ग है।''

''तुम्हें शोक करते देख तुम्हारे भाई और ये मित्र अधिक दु:खी हो रहे हैं। इन्हें सांत्वना भरी बातों से आश्वासन दो। तुम तो परम ज्ञानी हो, फिर भी आकुल हो रहे हो?''

''मैं अभिमन्यु की मृत्यु का वृत्तांत सुनना चाहता हूं। आपके रहते उसकी मृत्यु कैसे हुई? यदि मैं जानता कि पाण्डव और पांचाल मेरे ही पुत्र की रक्षा करने में असमर्थ हैं तो स्वयं ही उपस्थित होकर उसकी रक्षा करता।'' इतना कहकर अर्जुन चुप हो गए। युधिष्ठिर तथा कृष्ण के सिवाय उनकी ओर देखने या बोलने का साहस किसी में भी नहीं था।

अर्जुन के इतने विलाप के बाद युधिष्ठिर से नहीं रहा गया। मन को शांत करके उन्होंने अर्जुन के दु:ख को अपने दु:ख से अधिक जानकर कहा– ''जब तुम संशप्तकों की सेना से लड़ने

चले गए तो आचार्य द्रोण ने चक्रव्यूह की रचना कर डाली। यह उनकी दुष्ट तथा दुर्भावनापूर्ण कुटिल चाल थी। तुम तो जानते ही हो, हममें से कोई भी व्यूह भेदन की विद्या को नहीं जानता था। अभिमन्यु अपने पक्ष की इस प्रकार पराजय को सहन नहीं कर सका, वह उत्साह में इतना बढ़ गया कि मुझे और कुछ भी नहीं सूझा और उसे स्वीकृति दे दी।

मैं इतना ही जानता हूं मेरे भाई! बाकी दैव के विधान के आगे किसका बस चलता है। दु:ख की बात तो यह है कि द्रोण, कृपाचार्य, दुर्योधन, कर्ण, जयद्रथ, दु:शासन, अश्वत्थामा आदि महारथियों ने अंतिम चक्र में उस निहत्थे पर वार करके मार डाला। यह अनीतिपूर्ण युद्ध है इसका दुष्परिणाम इन्हें भुगतना ही पड़ेगा।

''हम उसे इस व्यूह में जैसे ही उसकी रक्षा के लिए आगे बढ़े, जयद्रथ ने शंकरजी के वरदान के बल से हमें व्यूह में घुसने से रोक दिया और दु:शासन के पुत्र ने संकट में आए अभिमन्यु पर प्राणघाती आक्रमण करके उसकी जीवनलीला समाप्त कर दी।''

''हा, पुत्र!'' एक भारी सांस लेते हुए अर्जुन ने धर्मराज से यह वृत्त जानकर एक अर्धचेतना का अनुभव किया और वह यकायक पृथ्वी पर गिर पड़े। निमिष मात्र को अर्जुन की आंखों के सामने अंधकार छा गया, किन्तु तुरंत ही चेतन होकर वे उठ खड़े हुए, मानो विकट संकल्प ले डाला हो।

''मैं आप लोगों के समक्ष यह प्रतिज्ञा करता हूं कि यदि जयद्रथ कौरवों का आश्रय छोड़कर भाग नहीं गया तो कल उसे संध्या पूर्व तक अवश्य मार दूंगा। यदि मैं इस प्रतिज्ञा में सफल नहीं होता हूं, तो संध्या समय स्वयं आत्मदाह कर लूंगा। यह मैं स्पष्ट कहता हूं कि देवता भी चाहेंगे तो कल जयद्रथ की रक्षा नहीं कर सकेंगे।''

जयद्रथ को जब अर्जुन की इस भीषण प्रतिज्ञा का पता चला तो उसके होश उड़ गए। शोक से विह्वल हो वह कुरुराज दुर्योधन की सभा में जाकर रोने-बिलखने लगा, मरणासन्न की भांति

उसका शरीर शिथिल हो रहा था, चेहरे पर श्वेत कण उभर आए थे, उसे अपनी मृत्यु साक्षात नृत्य करती दिखाई पड़ने लगी थी।

दुर्योधन ने उसे सांत्वना देते हुए कहा– ''वीर! इस प्रकार धीरज मत छोड़ो, हम तुम्हारे साथ हैं। तुम तो सिंधुराज! स्वयं श्रेष्ठ महारथी हो। मेरी सारी सेना तुम्हारे साथ रहेगी।''

दुर्योधन से आश्वस्त होकर जयद्रथ आचार्य द्रोण के पास गया। द्रोण ने कहा– ''वत्स! डरो मत यद्यपि दूर के लक्ष्य बेधन में अर्जुन तुमसे अधिक माहिर है, किन्तु हम तुम्हारे साथ हैं। ऐसा व्यूह बनाएंगे जिसमें अर्जुन पहुंच ही नहीं पाएगा। आखिरकार मेरा शिष्य ही तो है, व्यूह रचना में मैं उसे छका भी सकता हूं।''

यह जानकर जयद्रथ का भय कुछ कम तो अवश्य हुआ किन्तु अपने चारों ओर चीत्कार की आवाजें, भयानक कालिमा उसे मंडराती दिखाई देती रही।

अर्जुन ने प्रतिज्ञा कर ली तो कृष्ण ने उससे कहा– ''धनंजय! तुमने यह दु:साहस किया है, न मुझसे परामर्श किया, न भाइयों से। तुम चाहते तो बिना प्रतिज्ञा के भी संकल्प पूरा कर सकते थे।

तुम्हारी प्रतिज्ञा की ध्वनि शत्रुपक्ष में पहुंच गई होगी। इतने महारथियों में एक महारथी का एक दिन उकाना कोई बड़ी बात नहीं है। स्वयं गुरु द्रोण ऐसे व्यूह की रचना कर सकते हैं जिसका भेदन करते-करते ही तुम्हें संध्या हो जाए।

''मेरे गुप्तचरों ने सूचना दी है कि कल के व्यूह में कर्ण, भूरिश्रवा, अश्वत्थामा, वृषसेन, कृपाचार्य तथा शल्य ये छ: महारथी होंगे। वह व्यूह आधा शकट के आकार का तथा आधा कमल के आकार का होगा। कमल व्यूह के मध्य की कर्णिका के बीच सूची व्यूह के पास जयद्रथ खड़ा होगा। बाकी सभी वीर चारों ओर से उसकी रक्षा करेंगे। ये सभी महारथी बाण पराक्रम, बल में दु:सह हैं। इनमें एक-एक के पराक्रम पर विचार करो। तब ये छ: एक साथ होंगे, उस समय इनका जीतना सहज नहीं होगा।''

यह कहते हुए राजनीतिज्ञों तथा हितैषी मंत्रियों से सलाह करने के लिए कृष्ण चले गए। अर्जुन को अपनी दिव्यास्त्र शक्ति पर पूर्ण विश्वास था, किन्तु काल की गति पहचानने में जो भूल अर्जुन कर गए उसका निदान तो कृष्ण को करना ही था।

कृष्ण वहां से उत्तरा, सुभद्रा तथा द्रौपदी को समझाने चले गए।

रात्रि में अर्जुन अपनी प्रतिज्ञा की रक्षा के बारे में विचार करते हुए सो गए।

कृष्ण अपने भक्त के मन की गति जानते थे, अत: स्वप्न में उनसे कहने लगे– ''पार्थ! अब प्रतिज्ञा करने के बाद निराश मत होओ। अपनी शक्ति पहचानो, तुम्हारे पास भगवान शंकर का दिया पाशुपत अस्त्र है, जिससे उन्होंने पूर्वकाल में दैत्यों का संहार किया था। यदि उसका ज्ञान न हो तो मन-ही-मन उसका ध्यान करो।''

अर्जुन ने स्वप्न में ही बिछावन बिछाकर शंकर का ध्यान किया। वे कृष्ण के साथ ही उड़ते हुए महादेव शंकर की पुण्य स्थली कैलाश पर पहुंच गए।

वहां पहुंचकर अर्जुन ने देव श्रेष्ठ भगवान महादेव के चरण छूकर प्रणाम किया। कृष्ण ने भी झुककर अभिवादन किया। दोनों नर-नारायण को साथ आया देखकर शिव बड़े प्रसन्न हुए।

''वीरवरो! तुम्हारा स्वागत है, बोलो किस प्रयोजन से कष्ट किया?''

अर्जुन ने कहा– ''प्रभु आप तो अंतर्यामी हैं, हमारा मनोरथ पूर्ण करें।''

स्वप्न में ही भगवान शंकर से पाशुपत अस्त्र प्राप्त करके वे कृत-कृत हो गए। यह सारा वृत्त अर्जुन ने स्वप्न में ही देखा था।

रात्रि के बीतने पर प्रात:काल ही दोनों सेनाएं आमने-सामने थीं। आचार्य ने जयद्रथ को आदेश दिया– ''तुम भूरिश्रवा, कर्ण, अश्वत्थामा, कृपाचार्य, शल्य और वृषसेन के साथ चौदह हजार गजारोही तथा इक्कीस हजार अश्वारोही लेकर छ: कोस पीछे रहो, वहां इंद्रादि देव भी तुम्हारा कुछ नहीं बिगाड़ सकेंगे, फिर पाण्डवों की तो बिसात ही क्या।''

जयद्रथ आदेशानुसार व्यूह में अपने स्थान पर चला गया। राजा दुर्योधन आचार्य द्रोण के इस चक्रव्यूह को देखकर अत्यंत प्रसन्न हो गया।

वीरवर अर्जुन ने अपने दिव्य रथ पर चढ़कर गाण्डीव की टंकार करते हुए युद्धभूमि में प्रवेश किया। सेना के अग्रभाग में जाकर उसने शंखध्वनि की। कृष्ण ने भी अपना पांच्यजन्य शंख बजाया। इन दोनों शंखनादों की ध्वनि से सैनिकों के रोंगटे खड़े हो गए।

संग्राम छिड़ गया। कृष्ण और अर्जुन पर बाणों की वर्षा होने लगी। अर्जुन ने क्रोध में भरकर अपने बाणों से शत्रु सेना के सिर उड़ाने प्रारंभ कर दिए।

अब उन सैनिकों को सर्वत्र अर्जुन दिखाई पड़ने लगा। वे सैनिक बार-बार यही कहते, कहां है अर्जुन! और इस भ्रम में वे आपस में ही टकराने लगे। काल के वशीभूत वे सारे अर्जुनमय दिखाई देने लगे। कई तो लहूलुहान होकर मरणासन्न हो गए थे।

अर्जुन ने अपनी तेज बाण वर्षा से दुर्भर्षण की गज सेना का संहार कर दिया। इसको देखकर दुर्योधन की बची सेना भी भाग खड़ी हुई।

अरे यह क्या! जब दु:शासन ने सैनिकों को भागते देखा तो वह सामने आ गया, वह अर्जुन से भिड़ गया। इस समय मानो वह उग्र रूप धारण करके अर्जुन का काल बनना चाहता था लेकिन अर्जुन के भीषण सिंहनाद ने दु:शासन के पैरों में भी कम्पन उत्पन्न कर दिया, वह भाग खड़ा हुआ।

दु:शासन की सेना का संहार करके अर्जुन जयद्रथ के समीप पहुंचने के विचार से द्रोणाचार्य की सेना पर टूट पड़े।

आचार्य द्रोण व्यूह द्वार पर खड़े थे। अर्जुन ने कृष्ण की सम्मति से उन्हें प्रणाम करते हुए कहा– ''ब्रह्मन्! आप मेरे लिए कल्याण की कामना करें। आप पिता के समान हैं। जिस प्रकार

अश्वत्थामा की रक्षा करना आपका कर्तव्य है, उसी प्रकार मेरी रक्षा भी करनी चाहिए। आज आपकी कृपा से सिंधुराज जयद्रथ को मारना चाहता हूं। आप मेरी प्रतिज्ञा की रक्षा करें।''

मुस्कराते हुए आचार्य ने कहा– ''अर्जुन! मुझे परास्त किए बिना तुम जयद्रथ को नहीं जीत सकते।'' और यह कहते हुए आचार्य ने रथ, घोड़े, ध्वजा और सारथी सहित अर्जुन को अपने प्रखर बाणों से छेद दिया।

यह देखकर अर्जुन ने आचार्य पर भीषण प्रहार प्रारंभ कर दिया। आचार्य और अर्जुन एक-दूसरे के अस्त्रों को परस्पर काटते रहे।

''तुम्हें अपने दिन का कार्यक्रम याद नहीं रहा, अर्जुन! तुम्हें आचार्य को परास्त नहीं करना, जयद्रथ का वध करना है। आगे बढ़ो।'' और अर्जुन आचार्य की प्रदक्षिणा करके आगे बढ़ने लगे।

यह देखकर द्रोण ने कहा– ''पार्थ! शत्रु को बिना परास्त किए आज संग्राम से तुम कैसे हट रहे हो?''

''आप मेरे शत्रु नहीं, गुरु हैं आचार्य प्रवर! मैं भी आपके पुत्र के समान हूं। संसार में ऐसा कोई उत्पन्न ही नहीं हुआ जो आपको परास्त कर सके।''

अर्जुन को आगे बढ़ता देख कृतवर्मा ने अर्जुन को घेर लिया, किन्तु अर्जुन ने कृतवर्मा को शीघ्र ही बाणों के प्रभाव से अचेत कर दिया।

श्रुतायुध ने वहीं से चीखकर कहा– ''अर्जुन! मुझे परास्त करके आगे बढ़ना, लो मैं आ रहा हूं।''

श्रुतायुध के पास वरुण की गदा थी। क्रोध में श्रुतायुध ने अर्जुन को कमजोर करने के लिए वह गदा सारथी कृष्ण पर फेंक दी। गदा केवल सामने लड़ने वाले पर ही प्रहार कर सकती थी। यदि किसी ऐसे व्यक्ति पर फेंक दी जाए जो न लड़ रहा हो तो गदा फेंकने वाले के पास लौटकर

उसी का संहार कर देती थी। क्रोध में उन्मत्त श्रुतायुध यह भूल गया और अपने अहंकार में स्वयं अपनी गदा से मारा गया।

यह देखकर अनेक सैनिक अर्जुन पर टूट पड़े। धनंजय उनका गाजर-मूली की तरह संहार करने लगे।

श्रुतायु और अच्युतायु महाबलियों ने अपने सैनिकों का यह संहार देखा तो अर्जुन से सीधे भिड़ गए। श्रुतायु के तोमर के वार से अर्जुन क्षण भर के लिए घायल होकर अचेत हो गए। तभी अच्युतायु ने तीक्ष्ण त्रिशूल अर्जुन की ओर फेंका। अर्जुन अभी संभले भी न थे कि इस वार से तो वे ध्वज दण्ड का सहारा लेकर बैठ ही गए।

सेना में इस दृश्य से अर्जुन को मरा जानकर भारी कोलाहल मच गया। कृष्ण को चिंता हुई, उन्होंने कहा– ''अर्जुन! सचेत हो जाओ, अनर्थ हो जाएगा।'' चेतन हुए अर्जुन ने अपने ऐंद्रास्त्र से सम्मुख वीरों के हौसले पस्त कर दिए। उनके बाणों से शत्रुओं के बाण भी आकाश में उड़ने लगे। दोनों ही ओर के महाबलियों की भुजाएं और मस्तक कटकर धरा पर गिर पड़े।

यह दृश्य देखकर श्रुतायु और अच्युतायु के पुत्रों ने अर्जुन पर प्रहार किया, किन्तु ये क्षण भर भी न टिक सके, मृत्यु को प्राप्त हो गए।

अब अर्जुन गुरु द्रोणाचार्य तथा कृतवर्मा की सेनाओं को चीरकर व्यूह में घुस गए। दुर्योधन ने यह देखा तो वह आचार्य के पास आकर कहने लगा– ''आचार्य! आपके रहते अर्जुन व्यूह में घुस गया? अब सिंधुराज के प्राण संकट में पड़ गए तो यह जिम्मेदारी आपकी होगी। किसी प्रकार उसकी रक्षा कीजिए गुरुदेव! अर्जुन को रोकिए।''

''राजन! मैं व्यूह द्वार छोड़कर अर्जुन से लड़ने नहीं जाऊंगा। अब अर्जुन से तुम लड़ोगे, तुम किसी प्रकार भयभीत न होओ।''

''आचार्य! जो आपको लांघ गया, वह मुझसे क्या रुक पाएगा?''

द्रोणाचार्य ने दुर्योधन को अजेय कवच देते हुए कहा– ''लो यह इस प्रकार बांध दिया है कि इस पर किसी भी दिव्यास्त्र का प्रभाव नहीं पड़ेगा, तुम अजेय हो गए हो, कुरुराज!''

आचार्य के हाथ से इस प्रकार कवच धारण कर दुर्योधन त्रिगर्त देशों के राजाओं के साथ अर्जुन की ओर बढ़ गया।

इस समय सिंधुराज जयद्रथ सारी सेना के पीछे खड़ा था। कृपाचार्य आदि महान धनुर्धर उसकी रक्षा के लिए तैनात थे। अश्वत्थामा और कर्ण भी उसके दाएं-बाएं थे। जयद्रथ के पीछे भूरिश्रवा तैनात थे।

व्यूह के मुख पर अर्जुन के साथ त्रिगर्त देश के राजा और दुर्योधन भिड़े हुए थे।

सूर्य ढल रहा था, कौरव पक्ष के कुछ योद्धा मैदान में डटे हुए थे, कुछ लौट रहे थे। अर्जुन बराबर जयद्रथ की ओर बढ़ रहे थे। अर्जुन अपने बाणों से रथ बढ़ने योग्य रास्ता बनाते और कृष्ण उसी रास्ते से रथ आगे बढ़ा देते थे। जिस ओर से अर्जुन का रथ आगे बढ़ता कौरव सेना में उस ओर से ही दरार पड़ जाती थी। इस समय रथ की गति ने सूर्य, चंद्र, रुद्र तथा कुबेर के रथों को भी पराजित कर दिया था।

जिस समय कृष्ण अर्जुन का रथ लेकर रथियों के सम्मुख पहुंचा, उसके घोड़े भूख से व्याकुल हो चुके, बड़ी मुश्किल से रथ खींच रहे थे।

समय पाकर कृष्ण ने रथ रोक लिया। अर्जुन ने कहा– ''वासुदेव! आप बिना संकोच के बाण निकालिए, मैं कौरव सेना को रोकता हूं। ऐसा कहते हुए अर्जुन रथ से उतरकर अविचल पर्वत की भांति खड़े हो गए। रथियों के सामने भी रथहीन अर्जुन अपराजेय थे।

वहां पास ही कोई अच्छा जलाशय नहीं था। कृष्ण से यह जानकर अर्जुन ने तुरंत एक बाण मारकर धरती से जलधारा निकाल दी और देखते-ही-देखते एक सुंदर जलाशय तैयार हो गया और वहीं उसने बाणों से एक झोपड़ा भी तैयार कर दिया। अब कृष्ण ने घोड़ों को खोल दिया।

इस समय भी बड़े-बड़े महारथी अर्जुन से लड़ते हुए उन्हें पीछे न हटा सके।

अब अर्जुन के घोड़े भी जल पीकर, घास खाकर पुनः तरोताजा हो गए थे। अब अर्जुन फिर रथ पर सवार हो गए।

तभी दोनों ने सिंधुराज को सामने देखकर हर्षध्वनि की। इसी समय दुर्योधन ने जयद्रथ की रक्षा के लिए मोर्चा संभाल लिया।

कृष्ण ने कहा– ''अर्जुन आज यह तुम्हारा लक्ष्य तुम्हारे सम्मुख है। तुम इसे आज समाप्त कर दो।''

किन्तु अर्जुन के प्रयास के बाद भी दुर्योधन का अभेद्य कवच के कारण वे कुछ न बिगाड़ सके। अर्जुन ने कवच तोड़ने वाले बाण मंत्र पढ़कर चला दिए, किन्तु अश्वत्थामा ने उन्हें ऊपर-ही-ऊपर काट दिया। यह देखकर अर्जुन ने एक साथ इतने भीषण बाणों की वर्षा की कि दुर्योधन का रथ छिन्न-भिन्न हो गया, हथेलियां बिंध गईं, घोड़े मर गए, धनुष टूट गया। वह कवचधारी होकर भी भागने की चेष्टा करने लगा।

महारथियों ने तब अर्जुन के रथ को घेर लिया। कृष्ण ने पांचजन्य शंख बजा दिया, साथ ही गाण्डीव की टंकार से सारी पृथ्वी गूंज उठी। तब भूरिश्रवा, कर्ण, वृषसेन, जयद्रथ, कृपाचार्य, शल्य तथा अश्वत्थामा आठ वीरों ने एक साथ अर्जुन पर प्रहार करने प्रारंभ कर दिए।

जब अर्जुन इन वीरों से सामना करते हुए आगे बढ़ रहे थे, उधर सात्यकि का रथ कौरव सेना को चीरता हुआ अर्जुन की ओर बढ़ने लगा।

सात्यकि को सामने देखकर अर्जुन को संतोष हुआ, किन्तु यह चिंता भी हुई कि युधिष्ठिर सुरक्षित नहीं रह गए हैं। सूर्य ढलना ही चाहता है, मुझे जयद्रथ का वध करना है, यह भूरिश्रवा सात्यकि की ओर बढ़ रहा है, धर्मराज ने इसे मेरे पास भेज दिया है, यह महाराज की भूल ही है।

सात्यकि को सम्मुख देख भूरिश्रवा क्रोध में भरकर उसकी ओर दौड़ा। इन दोनों योद्धाओं का भयंकर युद्ध होना प्रारंभ हो गया।

जब सात्यकि भूरिश्रवा के चंगुल में फंस जाता है, जब कृष्ण उससे मित्र सात्यकि की इस दशा को दिखाते हैं। अर्जुन जो केवल जयद्रथ को ढूंढ रहे थे, फिर भी उन्होंने एक बाण भूरिश्रवा पर चला ही दिया। इससे भूरिश्रवा की भुजा कटकर गिर गई। फिर तो सात्यकि ने स्वयं को मुक्त कर लिया।

अब भूरिश्रवा ने अर्जुन से कहा– ''मैं दूसरे के साथ युद्ध में लगा हुआ था, तुमने मुझ पर इस प्रकार प्रहार करके जो अधर्म किया है, युधिष्ठिर को क्या जवाब दोगे ? यही कि तुमने सात्यकि के साथ भिड़े भूरिश्रवा को मार डाला है। तुम तो आचार्य द्रोण, इंद्र और भगवान शंकर के शिष्य हो, फिर यह अनीतिपूर्ण आचरण तुमने कैसे किया ?''

''सत्य ही वृद्ध होने पर बुद्धि सठिया जाती है, इसी से आप यहां नीति-अनीति की बातें कर रहे हैं और यहां तो सात्यकि और में ही था, और तुम भी निहत्थे नहीं हो, अभिमन्यु को तो आचार्य द्रोण के साथ सात-सात महारथियों ने मार डाला। क्या नीति-अनीति का विचार हमारे ही जिम्मे में आया है, तुम्हारे लिए वे नियम, सिद्धांत पालन के लिए नहीं हैं।''

यह सुनकर भूरिश्रवा ने मृत्युपर्यंत मरण व्रत लेकर उपवास का आसन जमा लिया।

तभी सात्यकि ने उठकर अपनी तलवार से भूरिश्रवा की गर्दन काट दी। उसे दूसरे महारथी रोकते कि तब तक गर्दन अलग हो चुकी थी।

यद्यपि भूरिश्रवा का इस प्रकार वध किसी को अच्छा नहीं लगा था, पर एक महारथी जयद्रथ के पक्ष का कम हो गया था। भूरिश्रवा को पुण्यलोक मिला।

अब जिधर जयद्रथ था उसी ओर अर्जुन का रथ आगे बढ़ने लगा।

दिन बहुत थोड़ा रह गया, यह कहते हुए दुर्योधन फिर अर्जुन के सम्मुख आ गया। उधर कर्ण ने भी अर्जुन को समीप देखकर अपने बाणों से भीषण वर्षा प्रारंभ कर दी। दुर्योधन ने कर्ण से कहा– ''यदि अर्जुन कुछ समय और ऐसे ही उलझा रहा तब भी हमारी ही विजय होगी क्योंकि यह तो बेचारा आत्मदाह कर लेगा और इसके पीछे शेष पाण्डवों को तो हम सब मिलकर सुलटा ही लेंगे।''

जिस समय दुर्योधन और कर्ण इस प्रकार बातचीत कर रहे थे, अर्जुन अपने पैने बाणों से उसकी सेना का संहार करने लगे।

जब अधिकांश योद्धा मारे गए तो बढ़ते-बढ़ते जयद्रथ के समीप पहुंच गए। अर्जुन का यह पराक्रम कौरव महारथी न सह सके, तब जयद्रथ की रक्षा के लिए सभी महारथी एक साथ आकर जुट गए और अर्जुन को बाणों से घेर लिया।

सूर्य लाल हो चुका था, छिपने की बाट जोह रहा था। रणोम्मत्त अर्जुन बाणों से महारथियों के तीक्ष्ण प्रभाव को नष्ट कर रहा था।

शीघ्र ही सूर्यास्त हो जाए इस इच्छा से उन महारथियों ने अपने रथ सटा लिए, घेरा संकरा कर दिया। इस पर भी अर्जुन इन वीरों को धराशायी करते हुए जयद्रथ की ओर बढ़ते रहे।

कर्ण ने इस समय अर्जुन की गति रोक दी किन्तु अर्जुन ने उसे रथहीन ही कर दिया। अश्वत्थामा ने यह देखा तो कर्ण को अपने रथ पर ले लिया और फिर दोनों अर्जुन से भिड़ गए। उधर शल्य, कृपाचार्य, वृषसेन ने भी मोर्चा संभाल लिया। अब अर्जुन ने जयद्रथ, कर्ण, शल्य, वृषसेन आदि पर भयानक बाण वर्षा की।

तब ये महारथी एक साथ अर्जुन पर टूट पड़े किन्तु अर्जुन का ऐसा मूर्तिमान काल के समान अभूतपूर्व पराक्रम देखकर कौरवों में सनसनी फैल गई और अर्जुन अब भी उन महारथियों को लांघकर जयद्रथ के समीप पहुंच गए।

अर्जुन को जयद्रथ की ओर बढ़ता देखकर कौरव योद्धा उसके जीवन से निराश संग्राम भूमि से लौट पड़े। इस समय अर्जुन इतने प्रलयकारी हो रहे थे, जो भी योद्धा सम्मुख आता था, वह धराशायी हो जाता था।

महारथी अर्जुन ने सारी कौरव सेना को कवचों से छा दिया। जयद्रथ से अर्जुन के बाण न सहे गए। वह अंकुश खाए हाथी के समान अत्यंत क्रोध में भर गया और उसने अर्जुन और कृष्ण को अपने बाणों से घायल कर दिया।

अर्जुन ने जयद्रथ के सारथी और ध्वजा को काट गिराया। जयद्रथ को इस समय छहों महारथियों के रक्षा कवच में देखकर कृष्ण ने अर्जुन से कहा– ''पार्थ! अब सूर्य के अस्त में कुछ ही समय शेष है, इन महारथियों पर विजय पाए बिना जयद्रथ को मारना संभव नहीं है और महारथियों को परास्त करने में सूर्य छिप जाएगा, इसलिए मैं एक माया रचता हूं।''

देखते-ही-देखते सूर्य अस्त हो गया। जयद्रथ ने सूर्य को अस्त हुआ जाना तो वह उल्लास से भर उठा– ''मैं बच गया। मैं बच गया।'' चिल्लाते हुए वह रथ से उतरकर दुर्योधन के गले लग गया। वे लोग इतने मत्त हो गए कि उन्हें सूर्य की ओर देखने का भी होश नहीं रहा।

कृष्ण की तो योजना ही यह थी कि जैसे ही सूर्य अस्त हो जाएगा, जयद्रथ अर्जुन को मारने के लिए बाहर निकल पड़ेगा। वह अपनी रक्षा का किसी प्रकार से प्रयास नहीं करेगा, उस समय अर्जुन उस पर अपना भीषण बाण छोड़कर उसका अंत कर देंगे। सूर्य अस्त हो गया– यह केवल कौरवों के लिए एक चाल थी। कृष्ण ने अर्जुन को सतर्क भी कर दिया था कि तुम कहीं यह मत समझ लेना कि सूर्यास्त हो गया है।

अर्जुन ने कृष्ण को जिस प्रकार आश्वस्त किया था, वही आचरण किया। तभी राजा जयद्रथ ने सिर को ऊंचा करके सूर्य की ओर देखा।

कृष्ण ने कहा– ''वीरवर देखो, सिंधुराज तुम्हारा भय छोड़कर सूर्य की ओर देख रहा है, यही अच्छा अवसर है इसे मारने का मौका चूकना नहीं चाहिए। फौरन ही इसका सिर धड़ से अलग करके अपनी प्रतिज्ञा पूरी करो।''

कृष्ण के संकेत पर तुरंत ही अर्जुन ने एक दिव्यास्त्र को अभिमंत्रित करके इंद्र के वज्र के समान प्रचण्ड बाण का संधान किया और बाण को गाण्डीव पर चढ़ाया।

कृष्ण ने कहा– ''शीघ्र करो अर्जुन! सूर्यदेव अस्ताचल में पहुंचने ही वाले हैं, दुष्ट जयद्रथ का मस्तक शीघ्र ही काट डालो।''

उसी समय कृष्ण ने यह भी बताया कि इसके पिता राजा वृद्धक्षत्र हैं, उन्हें अधिक आयु के बीतने पर यह पुत्र उत्पन्न हुआ था। जयद्रथ के जन्म के समय यह भविष्यवाणी हुई थी कि यह आपका पुत्र कुल, शील, दान आदि गुणों में सूर्य तथा चंद्रवंशियों के समान होगा। इसका संसार में सभी शूरवीर सम्मान करेंगे, किन्तु संग्राम में एक क्षत्रिय अचानक इसका सिर काट डालेगा।

यह सुनकर इसके पिता वृद्धक्षत्र चिंतित हो गए। इतने अधिक समय बाद, वृद्धावस्था में पाया यह पुत्र इस प्रकार मृत्यु को प्राप्त होगा, यह निश्चय ही उनके लिए व्याकुल कर देने वाली भविष्यवाणी थी।

वृद्ध राजा ने अपने जाति बंधुओं से कहा– ''जो पुरुष मेरे पुत्र का सिर धरती पर गिराएगा उसके मस्तक के भी सौ टुकड़े हो जाएंगे।'' यह कहकर वह राजा अपने पुत्र जयद्रथ का राज्याभिषेक करके वन को चला गया।

इस समय वह राजा वृद्धक्षत्र समंत पंचक तीर्थ के बाहर घोर तप कर रहा है। अत: तुम अपने दिव्यास्त्र से इसका सिर काटकर वृद्धक्षत्र की गोदी में गिरा दो। यदि तुमने इसे धरती पर गिरा

दिया तो तुम्हारे मस्तक के सौ टुकड़े हो जाएंगे।

अर्जुन कृष्ण से यह वृत्त भी सुनते रहे और अपने संधानित बाण की स्थिति को ठीक करते रहे। वृत्त सुनने के उपरांत अर्जुन ने एक पल के लिए कृष्ण की आंखों में देखा मानो स्वीकृति भी लेते रहे हैं और आशीर्वाद भी तथा वह वज्र बाण चला दिया।

बाण एक झटके में ही जयद्रथ का सिर धड़ से अलग कर साथ ही ले उड़ा। आकाश में सूर्य अभी भी उपस्थित थे।

जयद्रथ का सिर योजना के अनुसार तप करते महाराज वृद्धक्षत्र की गोद में पड़ा। तप करते अपनी गोद में कुछ गिरने की उन्हें आहट भी नहीं हुई। वह संध्योपासना के बाद जब उठे तो वह सिर उनकी गोद से धरती पर लुढ़क पड़ा। धरती पर गिरते ही स्वयं वृद्धक्षत्र के सिर के सैकड़ों टुकड़े इधर-उधर बिखर गए।

इस प्रकार अर्जुन ने जयद्रथ को संध्या समय पूर्व ही मार डालने की अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण की।

दुर्योधन आदि को यह ज्ञात हुआ तो वे हतप्रभ रह गए। यह तो कृष्ण की माया थी, सूर्य तो अभी छुपा नहीं है और जयद्रथ मारा जा चुका है।

यह देखकर दुर्योधन जार-जार करके विलाप करने लगा। उसे जयद्रथ की मृत्यु में अपनी भविष्य की पराजय दिखाई पड़ रही थी।

दुर्योधन के विलाप के दूसरी ओर कृष्ण और अर्जुन ने अपने-अपने शंख बजाकर विजय की उद्घोषणा कर दी।

अब वे वीर फिर से नई शक्ति पाकर शत्रुसेना का संहार करने लगे।

अश्वत्थामा और कृपाचार्य ने जयद्रथ को मरा देख क्रोध में अर्जुन पर भयानक बाण वर्षा की। अश्वत्थामा गुरुपुत्र थे, कृपाचार्य राजगुरु, दोनों के ही प्राण अर्जुन नहीं ले सकते थे। अत: उन्हें बाणों से घायल करके अचेत करके ही छोड़ दिया।

कृपाचार्य की पीड़ा देखकर अर्जुन को पश्चाताप हुआ। दुर्योधन के जन्म लेते ही काका विदुर ने कहा था– ''यह पुत्र कुल का घाती सर्वनाशी होगा। इस दुर्योधन के कारण ही मैं आज अपने कुलगुरु पर बाण वर्षा करने के लिए बाध्य हुआ।''

अर्जुन इस प्रकार व्यथित हो ही रहे थे कि राधानंदन कर्ण जयद्रथ वध से झुंझलाया हुआ अर्जुन पर चढ़ आया। सात्यकि ने यह देखा तो वह भी कर्ण पर टूट पड़ा।

सात्यकि को कर्ण से भिन्न देख कृष्ण ने कहा– ''अर्जुन! धैर्य धरो, कर्ण के लिए तो यह सात्यकि ही काफी है। अभी कर्ण से तुम मत टकराओ, उसके पास इंद्र की दी हुई शक्ति बाकी है, तुम्हें मारने के लिए वह उसका प्रयोग कर सकता है।

''कर्ण को तो इस समय सात्यकि से ही भिड़ने दो। मैं इस दुरात्मा के अंतकाल को पहचानता हूं, समय आने पर बताऊंगा।'' सात्यकि का कर्ण से भयानक संग्राम हुआ। सभी वीरों ने सात्यकि को बस में करने का पूरा प्रयत्न किया किन्तु वे सफल नहीं हो सके। अश्वत्थामा, कृतवर्मा और अन्य महारथियों को सात्यकि ने एक ही बाण से परास्त कर दिया। वह भी कृष्ण और अर्जुन के समान ही वीर और श्रेष्ठ धनुर्धारी था। अर्जुन के सारथी दासक का छोटा भाई एक रथ ले आया, उसी पर सात्यकि सवार हो गया और कौरव सेना का संहार करने लगा।

यह भीषण संग्राम अब समाप्त हो गया। सूर्य अस्त हो गया। अर्जुन की प्रतिज्ञा पूर्ण हो गई। कृष्ण ने अर्जुन को छाती से लगाकर कहा– ''यह बहुत अच्छा हुआ तुमने अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण कर ली और जयद्रथ अपने पापी वृद्धक्षत्र पिता के साथ मारा गया।''

''यह तो तुम्हारी ही कृपा है माधव!'' और धीरे-धीरे वे लोग संग्राम भूमि के उस छोर पर पहुंच गए जहां युधिष्ठिर विजयी युगल की प्रतीक्षा कर रहे थे।

वास्तव में अर्जुन के इस अद्भुत साहस और शौर्य की सब ओर भूरि-भूरि प्रशंसा होने लगी।

अर्जुन द्वारा कर्ण का वध

संशप्तकों की सेना समुद्र के समान विशाल थी, परंतु वीर अर्जुन ने उसमें प्रवेश करके एक तूफान-सा खड़ा कर दिया। वे तेज किए हुए बाणों से कौरवों की सेना के वीरों के सिर काट-काट कर गिराने लगे, थोड़ी ही देर में वहां की भूमि कटे हुए मस्तकों से पट गई। हजारों बाणों की वर्षा करके अर्जुन ने रथों, हाथियों और घोड़ों को मार गिराया। यह देखकर बड़े-बड़े योद्धा अर्जुन पर टूट पड़े और तीखे बाणों से उन्हें घायल करने लगे। अर्जुन पर सभी ओर से बाणों की वर्षा हो रही थी और वे उन सभी का निवारण कर रहे थे।

अकेले होने पर भी अर्जुन एक हजार महारथियों के समान अपना कौशल दिखा रहे थे। यह देखकर देवताओं ने अर्जुन पर फूलों की वर्षा की और तभी यह आकाशवाणी हुई कि ''जिन्होंने चंद्रमा की कांति, अग्नि की दीप्ति, वायु का बल और सूर्य का प्रताप धारण किया है, वे ही श्रीकृष्ण और अर्जुन रणभूमि में विराज रहे हैं। एक ही रथ पर बैठे हुए ये दोनों वीर ब्रह्मा और शंकर की भांति अजेय हैं, ये ही श्रेष्ठ नर और नारायण हैं।''

यह आकाशवाणी सुनकर अश्वत्थामा ने श्रीकृष्ण और अर्जुन पर धावा बोल दिया। उसने कृष्ण को साठ और अर्जुन को तीन बाण मारे। तब अर्जुन ने तीन बाणों से उसका धनुष काट दिया। अश्वत्थामा ने दूसरा धनुष उठा लिया और कृष्ण पर तीन तथा अर्जुन पर एक हजार बाणों से प्रहार किया। उसने अर्जुन को आगे बढ़ने से रोक दिया और फिर उस पर हजारों, लाखों बाणों की वर्षा की। उसने कृष्ण और अर्जुन को बींध डाला और फिर प्रसन्न होकर महामेघ के समान गर्जना की।

अश्वत्थामा की गर्जना सुनकर अर्जुन ने उसके चलाए हुए बाणों के तीन-तीन टुकड़े कर दिए। इसके पश्चात् उन्होंने संशप्तकों के रथ, हाथी, घोड़े, सारथी, ध्वजा और पैदल सिपाहियों को मारना शुरू कर दिया। गाण्डीव से छूटे हुए विभिन्न प्रकार के बाण तीन मील पर खड़े हुए

हाथी और मनुष्यों को भी मार गिराते थे। अर्जुन के बाणों से रथ, हाथी और उनके सवार भी समाप्त हो रहे थे।

यह देखकर अंग, बंग, कलिंग निषाद देशों के वीर अर्जुन को मारने की इच्छा से हाथियों पर सवार होकर वहां उपस्थित हो गए परंतु अर्जुन ने उनके हाथी के कवच, मर्मस्थान, सूंड, महावत, ध्वजा, पताका आदि को काट डाला। वज्र के मारे हुए हाथी भूमि पर गिर पड़े। यह देखकर अश्वत्थामा ने अपने धनुष पर दस बाण चढ़ाकर एक साथ ही अर्जुन और कृष्ण पर छोड़ दिए, जिनमें से पांच से तो अर्जुन घायल हो गए और पांच से कृष्ण घायल हो गए। दोनों के ही शरीर से रक्त की धारा बहने लगी। उस समय सभी यह सोचने लगे कि ये दोनों ही मारे गए।

उसी समय भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा कि अब समय आ गया है, तुम इसे मारो क्योंकि लापरवाही करने पर शत्रु प्रबल होकर दु:ख का कारण बन सकता है। अर्जुन ने आज्ञा को स्वीकार किया और अश्वत्थामा के घोड़ों की बागडोर काटकर उसके बांह, जांघ, छाती और सिर को बाणों से छेद डाला। घोड़े घबराकर अश्वत्थामा को रणभूमि से दूर ले गए। अश्वत्थामा इतना अधिक घायल हो चुका था कि उसमें अब लड़ने की हिम्मत ही नहीं बची थी। वह कुछ देर आराम करके कर्ण की सेना में प्रवेश कर गया।

श्रीकृष्ण और अर्जुन, अश्वत्थामा को युद्धभूमि से भगाकर जब संशप्तकों का सामना करने के लिए चले तो उन्हें पाण्डवों की सेना में बड़े जोर का शोर सुनाई दिया। वहां दण्डधार पाण्डवों की सेना का संहार कर रहा था। जब कृष्ण ने यह देखा तो अर्जुन से कहा– ''मगधदेश का राजा दण्डधार बड़ा ही पराक्रमी है, इसके पास एक महान गजराज है, युद्ध में भी यह कुशल है और बलशाली भी है। अत: तुम पहले इसी का वध करो, उसके पश्चात् ही संशप्तकों का संहार करना।''

दण्डधार घुड़सवारों और पैदल सैनिकों को अपने हाथी के पैरों में गिराकर कुचलवा रहा था। जब अर्जुन और कृष्ण वहां पहुंचे तो उसने कृष्ण को बारह और अर्जुन को सोलह बाणों से

घायल कर दिया तथा उनके घोड़ों को भी तीन-तीन बाण मारकर घायल कर दिया।

अर्जुन ने दण्डधार के धनुष और ध्वजा को काट दिया। तब क्रोधित होकर दण्डधार ने अपने हाथी को उनकी ओर दौड़ाया और तोमरों से उन पर वार किया। तब अर्जुन ने तीन क्षुर बाण चलाकर उसकी दोनों भुजा और मस्तक को एक ही साथ काट दिया और उसके हाथी को भी सौ बाण मारे, जिससे पीड़ित होकर वह गजराज जोर-जोर से चिंघाड़ने लगा और फिर इधर-उधर भागते हुए चक्कर खाकर गिर पड़ा और अचेत हो गया।

युद्ध में दण्डधार के मारे जाने के पश्चात् उसका भाई दण्ड श्रीकृष्ण और अर्जुन का वध करने के लिए आ गया। उसने आते ही कृष्ण को तीन और अर्जुन को तेज किए हुए पांच तोमर मारकर भीषण गर्जना की। तब अर्जुन ने उसकी दोनों ही बांहें काट डालीं और उसके मस्तक पर एक अर्धचंद्रकार बाण मारा, जिससे दण्ड का मस्तक कटकर हाथी पर से भूमि पर गिर पड़ा। उसके बाद उसके हाथी को मारा। इन दोनों भाइयों के मरने के पश्चात् और भी योद्धा युद्ध की इच्छा से आगे आए, पर उनका भी वही हाल हुआ। यह देखकर शत्रुसेना भाग खड़ी हुई और वीर अर्जुन संशप्तकों का संहार करने के लिए चल दिए।

अर्जुन ने बहुत शीघ्र ही संशप्तकों का संहार कर डाला। अनेक पैदल, रथी, घुड़सवार और हाथी अर्जुन के बाणों की मार से अपना धैर्य खो चुके थे। उनमें से कुछ तो भाग गए और कुछ गिरकर मर गए।

अब श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा कि तुम क्यों अपना समय खराब कर रहे हो। इन संशप्तकों का वध करने के बाद शीघ्र ही कर्ण का वध करने के लिए तैयार हो जाओ। अर्जुन बड़ी ही शीघ्रता के साथ संशप्तकों का वध कर रहे थे, जिसे देखकर स्वयं कृष्ण भी आश्चर्यचकित हो रहे थे। उन्होंने अर्जुन से कहा कि इस दुष्ट, पापी दुर्योधन के कारण ही इतना भयंकर संहार हो रहा है। तुमने जो आज यह अपना पराक्रम दिखाया है, वैसा स्वर्ग में केवल इंद्र ने ही किया था। इस प्रकार की बातें करते हुए दोनों ही जा रहे थे।

अभी वे लोग कुछ ही दूर गए थे कि उन्हें दुर्योधन की सेना के पास शंख, दुंदुभि, भेरी, पणव आदि बाजों की ध्वनि सुनाई दी। यह सुनकर उन्होंने अपने घोड़ों को दौड़ाया, वहां जाकर देखा कि राजा पाण्डय ने दुर्योधन की सेना का बड़ा भारी विनाश किया है। यह देखकर उन्हें बड़ा ही आश्चर्य हुआ। राजा पाण्डय अस्त्र विद्या में बहुत ही प्रवीण थे, उन्होंने अनेक प्रकार के बाणों से शत्रु सेना के वीरों को यमलोक पहुंचा दिया था।

एक ओर तो यह भयंकर संग्राम चल रहा था और दूसरी ओर अर्जुन संशप्तक सेना का विनाश कर रहे थे। शत्रुओं को जीतने के बाद अर्जुन ने कृष्ण से कहा कि हे जनार्दन! ये संशप्तक तो युद्ध में मेरे बाणों को सहन नहीं कर पा रहे हैं और घबराकर भाग रहे हैं परंतु कर्ण बड़े आनंद के साथ अपनी सेना में विचरण कर रहा है, उसकी पताका भी दिखाई दे रही है। कर्ण बहुत ही बलवान और पराक्रमी है, वह हमारी सेना को खदेड़ रहा है, इसलिए अब हमें उधर ही चलना चाहिए।

अर्जुन से यह सुनकर भगवान श्रीकृष्ण ने कहा कि अब तुम शीघ्र ही कौरवों का नाश करो। ऐसा कहते हुए वे दुर्योधन की सेना में घुस गए। उनके पहुंचते ही कौरवों की सेना इधर-उधर भागने लगी। जब दुर्योधन ने अर्जुन को अपनी सेना में देखा तो उसने संशप्तकों को आज्ञा दी कि वे इन दोनों ही वीरों के साथ युद्ध करें। संशप्तक योद्धा एक हजार रथ, तीन सौ हाथी, चौदह हजार घोड़े तथा दो लाख पैदल सेना लेकर अर्जुन पर वार करने लगे। उन्होंने अर्जुन को बाणों से ढक दिया और चारों ओर से घेरकर खड़े हो गए।

अर्जुन ने यमराज की भांति अपना रूप प्रगट किया और वे संशप्तकों का संहार करने लगे। उन्होंने बिजली के समान बाणों से आकाश को ढक दिया। उनके धनुष की प्रत्यंचा की आवाज सुनकर ऐसा जान पड़ता था मानो पृथ्वी, आकाश, दिशाएं, समुद्र, पर्वत फटे जा रहे हों। कुछ ही देर में अर्जुन ने दस हजार योद्धाओं का संहार कर दिया। वे संशप्तकों की सेना का संहार कर ही रहे थे कि सुदक्षिण का छोटा भाई उन पर बाण से प्रहार करने लगा। तब अर्जुन ने दो

अर्धचंद्राकार बाणों से उसकी भुजाएं काट डालीं और फिर उसका सिर धड़ से अलग कर दिया। इस प्रकार वहां पर भयानक नरसंहार हुआ।

इसी समय अश्वत्थामा अर्जुन का सामना करने के लिए आ गया। क्रोध में भरकर उसने अर्जुन और कृष्ण पर चारों ओर से बाण बरसाने शुरू कर दिए। कृष्ण और अर्जुन दोनों ही रथ पर बैठे हुए ही बाणों से ढक गए, वे निश्चेष्ट हो गए थे। यह देखकर सभी ओर हाहाकार मच गया, क्योंकि ऐसा पराक्रम आज तक किसी ने नहीं दिखाया था। अर्जुन को भी ऐसा लगा कि जैसे अश्वत्थामा ने उसका पराक्रम हर लिया है।

जब कृष्ण ने यह सब देखा तो उन्होंने अर्जुन से कहा– ''हे पार्थ! आज तुम्हें यह क्या हो गया है, द्रोणकुमार तुमसे अधिक बल दिखा रहा है, कहीं बल का अभाव तो नहीं हो गया तुम्हारे पास या फिर यह सोच रहे हो कि मेरे गुरु का पुत्र है परंतु मेरे मित्र! यह समय सोचने का नहीं है, कुछ करने का है।''

श्रीकृष्ण के समझाने पर अर्जुन ने चौदह भल्ल हाथ में लिए और उनसे अश्वत्थामा के धनुष, ध्वजा, छत्र, पताका, रथ, शक्ति और गदा को नष्ट कर डाला। उसके पश्चात् वत्सदंत नाम के बाणों से उसके गले की हंसली में इतने जोर का प्रहार किया कि उसे मूर्च्छा आ गई और वह ध्वजा का डंडा थामकर बैठ गया। इस प्रकार अर्जुन ने संशप्तकों का, भीम ने कौरवों का और कर्ण ने पांचालों का संहार कर दिया।

रास्ते में चलते हुए श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा– ''देखो ये तुम्हारे भाई हैं युधिष्ठिर! इन्हें मारने के लिए कौरव योद्धा इनका पीछा कर रहे हैं। दुर्योधन भी रथियों की सेना के साथ आ रहा है। ये हाथी सवार, घुड़सवार, रथी और पैदल सभी उन्हें पकड़ने के लिए आ रहे हैं। सात्यकि और भीम, युधिष्ठिर की ओर आने वालों को बीच में ही रोक रहे हैं। युधिष्ठिर भी बहुत बलवान हैं परंतु कर्ण ने उन्हें युद्ध से विमुख कर दिया है। धृतराष्ट्र के पुत्र वीर तो हैं ही, उस पर उन्हें कर्ण का साथ और मिल गया है। अत: वे महाराज युधिष्ठिर को कष्ट पहुंचा सकते हैं।''

कृष्ण और अर्जुन ने देखा कि कर्ण क्रोध में भरकर पंचालों की ओर दौड़ रहा है। कर्ण का रथ धृष्टद्युम्न की ओर जा रहा है, परंतु भीमसेन के बाणों के प्रहार से कौरव सेना भाग खड़ी हुई। हाथी भीम के नाराचों की मार से घायल होकर भूमि पर गिर रहे थे। भीम ने दस बाण मारकर निषादराज के पुत्र को भी मौत के घाट उतार दिया। उसने दुर्योधन की तीन अक्षौहिणी सेना को मार डाला है।

यह देखकर अर्जुन को बहुत प्रसन्नता हुई कि भीम ने कौरव सेना के छक्के छुड़ा दिए हैं। इसके पश्चात् अर्जुन ने बचे हुए शत्रुओं को तीखे बाणों से मारना शुरू कर दिया। वैसे तो संशप्तक योद्धा वीर तो थे ही, पर फिर भी वे अर्जुन की मार से युद्ध में ठहर नहीं सके और भाग गए।

उधर दुर्योधन ने जब युधिष्ठिर को आते देखा तो वह क्रोधित हो उठा, उसने अपनी आधी सेना को साथ लिया और उन्हें चारों ओर से घेर लिया, तथा क्षुरप्र मारकर उन्हें बींध डाला। यह देखकर महारथी नकुल, सहदेव और धृष्टद्युम्न एक अक्षौहिणी सेना लेकर युधिष्ठिर के पास आ गए। वहां पहुंचकर सहदेव ने दुर्योधन को बीस बाण मारे। इतने में कर्ण युधिष्ठिर की सेना का संहार करने लगा, तब राजा युधिष्ठिर ने तेज किए हुए बाणों से पचास बाणों से कर्ण को बींध दिया। उसके पश्चात् तो भयंकर युद्ध प्रारंभ हो गया।

धर्मराज युधिष्ठिर ने सान पर चढ़ाकर तेज किए हुए बाणों से सेना का संहार किया। वे जहां भी दृष्टि डालते थे, वहीं पर सेना का नामो-निशान तक मिट जाता था। यह देखकर कर्ण ने युधिष्ठिर पर नाराच, अर्धचंद्र तथा वत्सदंत आदि का प्रहार किया। कर्ण ने तीन बाणों से युधिष्ठिर की छाती को बींध दिया। तब पीड़ा से कराहते हुए युधिष्ठिर ने अपने सारथी को वहां से चलने की आज्ञा दी।

राजा युधिष्ठिर बाणों के प्रहार से बहुत घायल हो गए थे। यह देखकर नकुल और सहदेव ने कर्ण पर बाणों की वर्षा की, तब कर्ण ने भी तीखी धार वाले दो तीरों से नकुल और सहदेव को

घायल कर दिया और युधिष्ठिर के घोड़ों को मारकर एक तीर से उनके मस्तक के टोप को नीचे गिरा दिया। इसी प्रकार से नकुल के घोड़ों को मारकर उसके रथ की ध्वजा काट दी। रथ टूट जाने पर वे दोनों सहदेव के रथ पर जाकर बैठ गए।

नकुल और सहदेव को रथहीन देखकर उनके मामा मद्रराज शल्य को बड़ी दया आई। उन्होंने कर्ण से कहा– ''जब तुम्हें अर्जुन से युद्ध करना है तो फिर क्रोध में तुम युधिष्ठिर से युद्ध क्यों कर रहे हो, इन्हें मारने से तुम्हें क्या मिलेगा।''

इधर तो अर्जुन रथियों की सेना का संहार कर रहे हैं। उन्होंने तो बाणों की वर्षा करके सारी सेना को अस्त-व्यस्त कर दिया है। उधर भीमसेन ने दुर्योधन को दबोच रखा है। इस प्रकार मामा के कहने पर कर्ण दुर्योधन की सहायता करने के लिए चला गया।

कर्ण ने देखा कि दुर्योधन, भीमसेन के चंगुल में फंसा हुआ है, तो नकुल और सहदेव को छोड़कर वह दुर्योधन को बचाने के लिए दौड़ पड़ा। कर्ण के चले जाने के पश्चात् युधिष्ठिर सहदेव के घोड़े पर चढ़कर वहां से निकल गए। राजा युधिष्ठिर को अपनी पराजय पर बड़ी ग्लानि हो रही थी। नकुल और सहदेव के साथ अपने घायल शरीर को लेकर वे छावनी पर पहुंचे और रथ से उतरकर एक पलंग पर लेट गए।

इसी समय अश्वत्थामा रथियों की एक बड़ी सेना साथ लेकर अर्जुन के पास आ गया। उसे आते देख अर्जुन ने उसका रास्ता रोक लिया। यह देखकर वह क्रोधित होकर बाणों से कृष्ण और अर्जुन को मारने लगा। तब अर्जुन ने अपने दिव्यास्त्र का प्रयोग किया, परंतु अश्वत्थामा ने उसका निवारण कर दिया। अर्जुन ने जिस भी अस्त्र का प्रयोग किया, उसे अश्वत्थामा ने काट दिया। उसने अपने बाणों से दिशाओं और उपदिशाओं को ढककर, श्रीकृष्ण की बांह में तीन बाण मारे। इस पर अर्जुन ने उसके घोड़ों को घायल करके संग्राम में खून की नदी बहा दी। अश्वत्थामा का धनुष काट डाला।

अश्वत्थामा ने ऐंद्रास्त्र का प्रयोग किया, पर अर्जुन ने उसे महेंद्रास्त्र से काट दिया और उस द्रोणकुमार को बाणों से ढक दिया, परंतु द्रोणकुमार ने अपने सायकों से उन बाणों को काट गिराया और सौ बाणों से कृष्ण को तथा तीन सौ बाणों से अर्जुन को बींध डाला। तब अर्जुन ने भी अश्वत्थामा के मर्म-स्थानों पर सौ बाण मारे, उसके सारथी को एक भल्ला मारकर रथ से नीचे गिरा दिया। उस समय अश्वत्थामा ने ही घोड़ों की बागडोर संभालते हुए कृष्ण और अर्जुन पर बाण बरसाने शुरू कर दिए। इसी बीच अर्जुन ने उसके घोड़ों की बागडोर को क्षुरप्रों से काट डाला, जिससे घोड़े पीड़ित होकर भागने लगे। पाण्डव सेना ने कौरव सेना को भयंकर क्षति पहुंचाई थी।

कौरव सेना की यह दशा देखकर दुर्योधन ने कर्ण से कहा– ''पाण्डवों ने हमारी सेना को बहुत ही कष्ट पहुंचाया है। पाण्डवों के द्वारा खदेड़े हुए वीर अब तुम्हें ही पुकार रहे हैं।'' दुर्योधन की यह बात सुनकर कर्ण ने अपने धनुष पर भार्गवास्त्र का संधान किया, जिससे लाखों, करोड़ों और अरबों बाण निकले, जो अग्नि के समान जल रहे थे। उन भयंकर बाणों से पाण्डव सेना आच्छादित हो गई। सभी हाथी-घोड़े, रथी, पैदल आदि मरने लगे और अर्जुन तथा कृष्ण को पुकारने लगे।

कर्ण के बाण से मारे जाने वाले लोगों का स्वर सुनकर अर्जुन ने कृष्ण से कहा– ''इस भार्गवास्त्र का प्रयोग करने से तो कितने ही लोगों की जान चली गई है और इसका तो युद्ध में नाश भी नहीं किया जा सकता, कर्ण बार-बार मेरी ओर ही देख रहा है, मैं उसके सामने से भागना भी नहीं चाहता हूं।''

तब श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा– ''हे पार्थ! कर्ण ने युधिष्ठिर को बहुत घायल कर दिया है, इसलिए पहले तुम जाकर उन्हें धीरज दो। इसके पश्चात् ही कर्ण का वध करना।'' तब अर्जुन युधिष्ठिर से मिलने के लिए गए। अपनी सारी सेना में उन्हें युधिष्ठिर कहीं भी दिखाई नहीं दिए।

तब उन्होंने भीम से पूछा, तो उसने बताया कि कर्ण के बाणों से घायल होने के बाद भाईजी छावनी में चले गए हैं, क्योंकि उन्हें भयंकर पीड़ा हो रही थी।

अर्जुन ने भीम को युधिष्ठिर का समाचार लेने छावनी पर भेजना चाहा, परंतु भीम ने यह कहा कि यदि मैं यहां से चला जाऊंगा तो शत्रु पक्ष के लोग यही कहेंगे कि भीमसेन डरकर भाग गए। अत: आप ही जाकर उनकी खबर लें।

इस पर अर्जुन ने कहा– ''मेरे शत्रु संशप्तक सामने खड़े हैं। आज इन्हें मारे बिना मैं यहां से नहीं जा सकता।'' तब भीम ने कहा कि मैं अपने पराक्रम से इन संशप्तकों का सामना करूंगा, आप निश्चिंत होकर जाइए।

तब श्रीकृष्ण और अर्जुन शीघ्र ही वहां से चल दिए। धर्मराज के पास पहुंचकर दोनों ने उन्हें प्रणाम किया। धर्मराज ने यह समझा कि कर्ण मारा गया है। वे अत्यंत प्रसन्न हुए और बोले– ''हे देवकीनंदन! तुम्हारा स्वागत है। तुम लोगों ने स्वयं कुशल रहकर कर्ण को मार डाला है। वह सभी प्रकार की विधा में कुशल और कौरव सेना का अगुआ था। वह दुर्योधन के हित के लिए हमें दु:ख पहुंचाता था। ऐसे महाबली वीर को तुमने मार डाला है।''

युधिष्ठिर ने कृष्ण और अर्जुन को बताया– ''आज कर्ण ने मेरे साथ भयंकर युद्ध किया था, उसने मेरे सभी साथियों को मार दिया था और मुझे बहुत से कटु वचन भी कहे थे। मैं इस समय जीवित हूं, इसका श्रेय तो भीम को है। कर्ण ने तो मुझे इतना घायल और अपमानित कर दिया है कि मुझे तो यह लगता है कि मेरे जीने का क्या लाभ है। अब मैं राज्य लेकर भी क्या करूंगा। भीष्म, द्रोण और कृपाचार्य ने भी कभी मेरा इतना अपमान नहीं किया है, जितना आज इस सूतपुत्र ने किया है, इसलिए तुम मुझे यह बताओ कि तुमने सूतपुत्र को किस प्रकार से मारा है।''

धर्मात्मा युधिष्ठिर की बात सुनकर अर्जुन बोले– ''हे राजन! आज जब मैं संशप्तकों के साथ युद्ध कर रहा था, उस समय अश्वत्थामा बाणों की वर्षा करता हुआ मेरे सामने आ गया। मेरा

रथ देखते ही उसकी सारी सेना मेरे से युद्ध करने के लिए खड़ी हो गई। तब मैं उस सेना के पांच सौ वीरों को मारकर अश्वत्थामा के पास गया। मैंने उसके सैनिकों का संहार तो कर डाला, परंतु कर्ण को वहीं छोड़कर आपके दर्शन करने के लिए यहां आ गया, क्योंकि मैंने यह सुना था कि कर्ण ने आपको युद्ध में घायल कर दिया है।''

युधिष्ठिर तो कर्ण के बाणों से घायल होकर कष्ट का अनुभव कर ही रहे थे, फिर जब उन्होंने अर्जुन से यह सुना कि कर्ण अभी जीवित है तो उन्हें बड़ा ही क्रोध आया। उन्होंने अर्जुन से कहा– ''जब तुम कर्ण को नहीं मार सके तो भयभीत होकर भीम को अकेले छोड़कर यहां भाग आए। यह तुम्हारा कैसा स्नेह है। वीर माता कुंती के गर्भ से जन्म लेकर यह तुमने अच्छा नहीं किया। तुमने तो द्वैतवन में यह प्रतिज्ञा की थी कि मैं अकेला ही कर्ण को मारूंगा, फिर उसे जीवित छोड़कर यहां क्यों चले आए?''

युधिष्ठिर ने कहा– ''जब तुम्हारा जन्म हुआ था तो यह आकाशवाणी हुई थी कि यह बालक इंद्र के समान पराक्रमी होगा, शत्रुओं पर विजय प्राप्त करेगा, खाण्डव वन के समस्त देवताओं और प्राणियों को जीत लेगा। संसार में इससे बड़ा धनुर्धर कोई भी नहीं होगा परंतु लगता है कि यह सत्य नहीं है।'' युधिष्ठिर बहुत परेशान थे। उन्हें तो इस बात का दु:ख था कि अर्जुन ने उसे अब तक मारा क्यों नहीं। वे कहने लगे– ''लगता है कि देवता भी झूठ बोलने लगे हैं। मैंने तो हमेशा ही तुम्हारी प्रशंसा करने वाले बड़े-बड़े ऋषियों के मुख से ये बातें सुनी हैं, इसीलिए मुझे दुर्योधन की उन्नति पर कभी विश्वास नहीं हुआ और न ही मुझे यह मालूम था कि तुम कर्ण से डरते हो।

''हे पार्थ! यदि आज तुम्हारा पुत्र अभिमन्यु जीवित होता तो शत्रु पक्ष के सभी महारथियों का विनाश कर देता और मुझे युद्ध में इतना अपमान नहीं सहना पड़ता। यदि घटोत्कच भी जीवित होता तो भी मुझे यह दिन नहीं देखना पड़ता, परंतु यह तो मेरे भाग्य का दोष ही तो है कि दुरात्मा

कर्ण ने तुम्हें तिनके के समान भी न मानकर मेरे साथ यह व्यवहार किया है, जो कि किसी बंधुहीन एवं असमर्थ मनुष्य के साथ किया जाता है।

''अरे अर्जुन! तुम्हारे पास तो विश्वकर्मा का बनाया हुआ रथ है, जिसके धुरे से कभी ध्वनि नहीं होती तथा जिसकी ध्वजा पर वानर विराजमान है। तुम्हारे हाथों में तो गाण्डीव जैसा धनुष है तथा भगवान श्रीकृष्ण तुम्हारे रथ हांकते हैं। इन सभी के होते हुए भी तुम कर्ण से डरकर भाग आए। यदि तुम कर्ण से मुकाबला करने की शक्ति नहीं रखते तो अपना यह गाण्डीव धनुष उस राजा को दे दो जो तुमसे अधिक शक्तिशाली हो। तुम्हारे इस गाण्डीव को धिक्कार है और धिक्कार है तुम्हारे इस रथ, ध्वजा और इन बाणों को।''

युधिष्ठिर के ऐसा कहने पर अर्जुन को बड़ा ही क्रोध आया, उसने धर्मराज को मारने के लिए तलवार उठा ली।

तब श्रीकृष्ण ने कहा– ''अर्जुन! तुमने यह तलवार क्यों निकाली है, क्या यहां किसी से युद्ध करना है, परंतु यहां पर तो कोई भी ऐसा नहीं दिखाई देता जो तुम्हारा शत्रु हो। बताओ तुम क्या करना चाहते हो?''

श्रीकृष्ण के पूछने पर क्रोध में भरे हुए अर्जुन ने कहा– ''मैंने गुप्त रूप से यह प्रतिज्ञा की थी कि जो कोई भी मुझसे यह कह देगा कि तुम अपना ये गाण्डीव किसी दूसरे को दे दो, उसका मैं सिर काट दूंगा।

''राजा ने आपके सामने ही यह बात मुझसे कही है, अत: मैं उन्हें क्षमा नहीं कर सकता। आज इनका वध करके अपनी प्रतिज्ञा पूरी करूंगा। इसीलिए मैंने यह तलवार उठाई है। हे त्रिलोकीनाथ! आप तो भूत और भविष्य को जानने वाले हैं। आप मुझे आज्ञा दें, मैं वैसा ही करूंगा।''

अर्जुन से ऐसा सुनकर कृष्ण ने कहा– ''लगता है तुमने कभी वृद्धों की सेवा नहीं की, तभी तो तुम्हें बेमौके क्रोध आ गया।

हे पार्थ! जो धर्म को जानता है, वह ऐसा नहीं कर सकता। तुमने इस समय जो व्यवहार किया है, उससे तुम्हारी अज्ञानता का पता चलता है। जो मनुष्य करने योग्य काम तो नहीं करता और नहीं करने के योग्य काम करता है, वह मनुष्य अधर्मी होता है।

क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए, यह जान लेना कठिन है, इसका ज्ञान तो शास्त्र से ही होता है।''

तब कृष्ण ने अर्जुन को समझाते हुए कहा– ''हे वीरवर! राजा युधिष्ठिर थक गए हैं। कर्ण के बाणों से घायल हो गए हैं। ये तो जब युद्ध नहीं कर रहे थे, तब भी इनके ऊपर बाणों की वर्षा हो रही थी। इसीलिए दुखी होकर इन्होंने तुम्हें न कहने योग्य बात कह दी है।

''ये तो इस बात को जानते हैं कि तुम ही उस पापी कर्ण को मार सकते हो और उसके मारे जाने पर कौरवों को शीघ्र ही जीता भी जा सकता है। यह सोचकर ही इन्होंने तुमसे ये सभी बातें कही हैं और तुमने उन्हें मारने के लिए तलवार उठा ली थी। अत: इनका वध करना उचित नहीं है।

''यदि तुम्हें अपनी प्रतिज्ञा का पालन ही करना है तो जिस उपाय से ये जीवित रहते हुए मरे के समान हो जाएं वह उपाय करो। मैं तुम्हें बताता हूं।''

कृष्ण ने बताया– ''सम्माननीय पुरुष संसार में जब तक सम्मान पाता है तब तक ही उसका जीवित रहना माना जाता है। जिस दिन उसका अपमान हो जाए, उस दिन से वह जीते-जी ही मरा हुआ समझा जाता है। तुमने भीमसेन, नकुल, सहदेव, अन्य सभी ने युधिष्ठिर का सम्मान किया है। अत: आज तुम उनका अपमान करो। तुम उन्हें आप कहकर पुकारते हो तो आज से तू कहना प्रारंभ कर दो। तुम्हारे मुख से धर्मराज अपने लिए 'तू' सुनकर अपना वध ही समझेंगे।

''ऐसा करने के पश्चात् तुम उनके चरणों में अपना सिर रख देना और अपने द्वारा कही गई अनुचित बात के लिए क्षमा मांग लेना।

''धर्मराज, धर्म का ख्याल करके तुम पर क्रोध नहीं करेंगे। इस प्रकार से तुम मिथ्या भाषण और भाई के वध से बच जाओगे और फिर तुम उस सूतपुत्र कर्ण का वध करना।''

श्रीकृष्ण के मुख से यह सुनकर अर्जुन ने उनकी प्रशंसा की और फिर वे युधिष्ठिर को कटु वचन कहने लगे। अर्जुन ने युधिष्ठिर को अनेक बातें कहकर अपमानित किया।

परंतु सब कुछ कह देने के पश्चात् जब उन्हें इस बात की जानकारी हुई कि अरे मैंने यह क्या कह दिया तो उन्हें बड़ा ही क्षोभ हुआ, उन्हें यह लगने लगा कि उनसे बहुत बड़ा पाप हो गया है, तब उन्होंने फिर से तलवार निकाल ली। यह देखकर कृष्ण ने कहा कि अरे यह क्या कर रहे हो।

तब अर्जुन ने कहा– ''भगवन! मैंने जिद में आकर अपने बड़े भाई का अपमान कर दिया है, यह तो घोर पाप है इसलिए मैं अब अपने इस शरीर को नष्ट कर दूंगा।''

अर्जुन के ऐसा कहने पर कृष्ण ने उसे समझाते हुए कहा– ''अपने भाई को 'तू' कह देने पर इतने दु:खी क्यों हो रहे हो कि आत्मघात करना चाहते हो। अरे भाई का वध करने से जिस नरक की प्राप्ति होगी, उससे भी भयानक नरक तो आत्मघात करने पर मिलेगा, इसलिए प्रायश्चित स्वरूप तुम अपने गुणों का बखान करो। ऐसा करने से तुम अपने ही हाथों मारे जाओगे।''

अर्जुन ने युधिष्ठिर के सामने अपने गुणों का बखान करना प्रारंभ कर दिया और कहने लगे– ''राजन! भगवान शंकर को छोड़कर कोई दूसरा मेरे समान धनुर्धर नहीं है, मुझ जैसा वीर यदि युद्ध में पहुंच जाए तो उसे कोई भी नहीं जीत सकता।''

इस प्रकार अपने गुणों का बखान करने के पश्चात् अर्जुन ने कृष्ण से कहा– ''अब तो हम दोनों को विजयी रथ पर बैठकर सूतपुत्र कर्ण का वध करने के लिए चल देना चाहिए। मैं कर्ण को अपने बाणों से नष्ट कर दूंगा। फिर युधिष्ठिर से बोले– ''आज या तो कर्ण की माता पुत्रहीन

होगी या फिर माता कुंती ही मुझसे हीन हो जाएंगी। मैं यह बात बिल्कुल सत्य ही कह रहा हूं कि कर्ण को मारे बिना कवच नहीं उतारूंगा।''

ऐसा कहते हुए अर्जुन ने अपने हथियार और धनुष नीचे डाल दिए और तलवार म्यान में रख ली। तत्पश्चात् युधिष्ठिर के चरणों में सिर झुकाया और क्षमा भाव से कहा– ''महाराज! मैंने जो भी कहा है, उसे भूलकर मुझ पर प्रसन्न होकर आशीर्वाद दीजिए। मैं भीमसेन को युद्ध से छुड़ाने के लिए तथा सूतपुत्र का वध करने के लिए जा रहा हूं। मेरा जीवन तो आपको प्रिय करने के लिए ही है।'' ऐसा कहकर अर्जुन ने राजा के चरणों का स्पर्श किया और फिर वे रणभूमि की ओर जाने लगे।

अर्जुन के वचनों से महात्मा युधिष्ठिर का मन बड़ा दुखी हो गया था। उन्होंने अर्जुन से कहा– ''मैंने अच्छे काम नहीं किए हैं, तभी तो तुम पर संकट आया है। मैं आज ही वन में चला जाता हूं। राजा होने के योग्य तो भीम भी है। मैं तो क्रोधी और कायर हूं। इतना अपमान हो जाने पर मुझे तो जीने की कोई इच्छा नहीं है।'' यह कहते हुए वे सहसा पलंग से कूद पड़े।

यह देखकर भगवान श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर को प्रणाम किया और बोले– ''राजन! आपको तो अर्जुन की यह प्रतिज्ञा ज्ञात ही है कि जो कोई भी उन्हें यह गाण्डीव धनुष दूसरे को देने के लिए कह देगा, वह उनका वध्य होगा। यह जानते हुए भी आपने उनसे धनुष देने की बात कह दी। इसलिए अर्जुन ने मेरे कहने पर अपनी प्रतिज्ञा की रक्षा करते हुए आपका अनादर किया है। गुरुजनों का अपमान ही उनका वध कहलाता है। अर्जुन ने सत्य की रक्षा के लिए ही न्याय के विरुद्ध आचरण किया है। अत: आप उसे क्षमा करें। हम दोनों ही आपकी शरण में आए हैं। इस सब में मेरा भी दोष है, आप मुझे भी क्षमा करें। आज तो यह पृथ्वी उस पापी कर्ण के रक्त का पान करेगी, यह मेरी प्रतिज्ञा है।''

भगवान श्रीकृष्ण की यह बात सुनकर युधिष्ठिर ने उन्हें अपने चरणों पर से उठाते हुए कहा– ''आप जो कुछ भी कहते हैं, वह सत्य ही है। आपने तो यह रहस्य बताकर मुझे डूबने से बचा

लिया है। आपके कारण ही हम लोग भयंकर विपत्ति से बच पाए हैं।''

धर्मराज के ये प्रेमपूर्ण वचन श्रीकृष्ण ने अर्जुन को भी बताए और बोले– ''बड़े भाई को केवल 'तू' कह देने मात्र से ही तुम अपने आपको पापी अनुभव कर रहे हो। यदि तुम उनका वध कर देते तो तुम्हारी क्या दशा होती। वास्तव में धर्म का स्वरूप जानना बहुत ही कठिन है। अब तो तुम अपने भाई को प्रसन्न करो जिससे कि हम शीघ्र ही कर्ण का वध करने के लिए यहां से प्रस्थान करें।''

अब अर्जुन राजा युधिष्ठिर के पास गए और उनके चरणों में गिर गए। तब युधिष्ठिर ने भी उन्हें उठाकर गले लगाया और दोनों ही भाई फूट-फूटकर रो पड़े। दोनों का मन शुद्ध हो गया था।

इसके पश्चात् युधिष्ठिर ने अर्जुन से कहा– ''कर्ण के सैनिकों ने मेरा कवच, रथ की ध्वजा, धनुष, बाण, शक्ति और घोड़े नष्ट कर दिए थे, जिसके कारण मैं बहुत ही दु:खी हूं, अब तो जीना भी अच्छा नहीं लगता। यदि आज तुमने युद्ध में उस वीर को नहीं मारा तो मैं निश्चय ही अपने प्राण त्याग दूंगा।''

युधिष्ठिर के ऐसा कहने पर अर्जुन ने कहा– ''मैं नकुल और भीमसेन की सौगंध खाता हूं, अपने बाणों को छूकर सत्य की शपथ लेकर कहता हूं कि आज या तो मैं कर्ण को मार दूंगा या फिर स्वयं ही अपने प्राण दे दूंगा।''

तब श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा कि मेरी तो सदा ही यह इच्छा रही है कि तुम किसी तरह कर्ण को मारते।

अर्जुन से यह कहकर कृष्ण धर्मराज युधिष्ठिर से बोले– ''राजन! आप कर्ण के बाणों से बहुत पीड़ित हो गए हैं। यही सुनकर मैं और अर्जुन आपको देखने आए थे। सौभाग्य की बात यह है कि आप उस दुष्ट के हाथों न तो बंधक बनाए गए, न मारे गए। अब आप अर्जुन को शांत करके इन्हें विजय के लिए आशीर्वाद दीजिए।''

युधिष्ठिर ने कहा– ''भाई अर्जुन! आओ, मेरी छाती से लग जाओ। तुमने कहने योग्य तथा हित की बात ही कही है, इसके लिए मैंने तुम्हें क्षमा भी कर दिया है। अब मैं तुम्हें आज्ञा देता हूं जाओ कर्ण का नाश करो।''

यह सुनकर अर्जुन ने युधिष्ठिर के चरण स्पर्श करके उन्हें प्रणाम किया।

युधिष्ठिर ने उन्हें स्नेह से उठाकर फिर छाती से लगा लिया और भाई का मस्तक चूमकर कहा– ''धनंजय! तुमने बहुत सम्मान दिया है मुझे, मेरा आशीर्वाद सदैव तुम्हारे साथ रहेगा। तुम्हारी महिमा सर्वत्र बढ़ेगी, सनातन विजय पाओगे।''

अर्जुन भाव-विभोर हो गए और कहने लगे– ''भाई जी! जिसने आपको बाणों से पीड़ित किया है, उस कर्ण को आज अपने इस दुष्कर्म का फल अवश्य ही मिलेगा। अब मैं उसका वध करके ही आपके सम्मुख आऊंगा।''

इस सत्य और अपनी अटल प्रतिज्ञा के साथ अर्जुन ने युधिष्ठिर के चरणों का स्पर्श करते हुए आज्ञा मांगी।

यह सुनकर युधिष्ठिर का चित्त प्रसन्न हुआ। उन्होंने चलते हुए अर्जुन से कहा– ''पार्थ! तुम्हें सदा ही अक्षय यश पूर्ण आयु तथा मनोवांछित कामना, बल की प्राप्ति हो। तुम्हारे लिए मैं जो कुछ चाहता हूं वह सब तुम्हें मिले। अच्छा अब तुम जाओ और शीघ्र ही कर्ण के वध के समाचार से मुझे प्रसन्न करो।''

अर्जुन क्रोध में लाल आंखें किए रणभूमि में जा पहुंचे। उस समय उनके सामने दो संकल्प थे – भीम को संकट से छुड़ाना तथा कर्ण के मस्तक को धड़ से अलग कर देना।

अर्जुन घोड़े, रथ और सवार सहित हाथियों आदि के साथ संपूर्ण शत्रुओं को अपने बाण समूह से समूल नष्ट करने लगे।

कर्ण की ध्वजा का डंडा रत्न का बना हुआ था, उस पर हाथी की साकेल का चिह्न था। अर्जुन की ध्वजा पर एक श्रेष्ठ वानर बैठा था, जो यमराज के समान मुंह बाए रहता था। वह अपनी दाढ़ों से सबको डराया करता था। उसकी ओर देखना भी कठिन था।

भगवान श्रीकृष्ण ने मद्रराज शल्य की ओर आंखों की त्यौरी चढ़ाकर देखा। शल्य कर्ण के सारथी थे। ऐसा लग रहा था मानो कृष्ण उसे नेत्र रूपी बाणों से बींध रहे हों।

शल्य ने भी उनकी ओर उसी तरह की दृष्टि डाली, किन्तु इसमें विजय कृष्ण की ही हुई। शल्य की पलकें झेंप गईं। इसी प्रकार अर्जुन ने भी दृष्टि द्वारा कर्ण को परास्त किया।

कर्ण शल्य से हंसकर बोला– ''शल्य! यदि इस संग्राम में अर्जुन मुझे मार डाले तो तुम क्या करोगे?''

शल्य ने कहा– ''यदि वे इस दुस्चाल में सफल हो गए तो मैं कृष्ण सहित अर्जुन को मौत के घाट उतार दूंगा।''

अर्जुन ने कृष्ण से पूछा– ''हे मधुसूदन! यदि कर्ण मुझे मार डाले तो तुम क्या करोगे?''

कृष्ण ने हंसकर कहा– ''पार्थ! क्या यह भी कभी सच हो सकता है। कदाचित सूर्य अपने स्थान से गिर जाए, समुद्र सूख जाए और आग अपनी जलन छोड़कर शीतलता स्वीकार करे तो यह संभव हो सकता है, पर कर्ण तुम्हें मार डाले यह कदापि संभव नहीं है। यदि किसी तरह ऐसा हो गया धनंजय! तो समझो, संसार ही उलट जाएगा। मैं अपनी भुजाओं से ही शल्य तथा कर्ण को मसल डालूंगा।''

कृष्ण की यह बात सुनकर अर्जुन हंस पड़े और बोले– ''ये शल्य और कर्ण तो मेरे लिए ही काफी नहीं हैं, आज आप मेरे हाथ देखिएगा। मैं छत्र, शक्ति, कवच, धनुष, बाण, रथ, घोड़े तथा राजा शल्य सहित कर्ण को अपने बाणों से टुकड़े-टुकड़े कर डालूंगा।

''आज सूतपुत्र की स्त्रियों के वैधव्य का समय आ गया है। इस अदूरदर्शी मूर्ख ने द्रौपदी को सभा में आई देख, बार-बार उस पर आक्षेप किया और हम लोगों की खिल्ली उड़ाई। आज तो मैं इसको अवश्य ही रौंद डालूंगा।''

दुर्योधन, कृतवर्मा, शकुनि, कृपाचार्य तथा कर्ण ये पांच महारथी कृष्ण और अर्जुन पर प्राणांतकारी बाणों का प्रहार करने लगे। यह देख अर्जुन ने उनके धनुष, बाण, तरकश, घोड़े, हाथी, रथ, सारथी आदि को अपने बाणों से नष्ट कर डाला, साथ ही उनका मान-मर्दन करके सूतपुत्र कर्ण को बाणों से बींध डाला।

इतने में ही वहां सैकड़ों रथी, महारथी आदि पहुंच गए। अर्जुन के आगे उनकी एक न चली। यह देखकर आकाश में देवों की दुंदभि बज उठी। सभी अर्जुन के इस शौर्य पर उसे साधुवाद देने लगे। फूलों की वर्षा होने लगी।

इस समय द्रोणकुमार अश्वत्थामा, दुर्योधन के पास गया और बोला– ''दुर्योधन! अब प्रसन्न होकर पाण्डवों से संधि कर लो, विरोध से कोई लाभ नहीं है। तुम्हारे गुरु द्रोण अस्त्र विद्या में पंडित थे, वे भी युद्ध में मारे गए। यही दशा पितामह भीष्म आदि महारथियों की भी हुई। मैं और मामा कृपाचार्य तो अवध्य हैं, इसीलिए अब तक बचे हुए हैं। अत: तुम पाण्डवों से संधि कर लो और उनके हिस्से का राज्य उन्हें देकर अपने को चिरकाल तथा राज्य सुख से संपन्न करो।

मेरे मना करने से अर्जुन युद्ध से विरत हो जाएंगे। श्रीकृष्ण भी विरोध नहीं चाहते। युधिष्ठिर तो सभी प्राणियों के हित में ही लगे रहते हैं। वे भी मान जाएंगे, बाकी रहे नकुल और सहदेव ये तो धर्मराज के अधीन हैं। उनका विरधिन ही करेंगे।

दुर्योधन! सुनो, तुम्हारे साथ पाण्डवों की संधि हो जाने पर सारी प्रजा का कल्याण होगा। फिर तुम्हारी अनुमति से ये राजा भी अपने-अपने देश को लौट जाएंगे। सैनिकों को भी छुटकारा मिल जाएगा।

हे राजन! यदि तुम मेरी बात नहीं सुनोगे तो निश्चय ही शत्रुओं के हाथ से मारे जाओगे और फिर तुम्हें बहुत पश्चाताप होगा। आज तुमने और सारे संसार ने देख लिया कि अकेले अर्जुन ने जो पराक्रम दिखाए हैं उसे इंद्र, यमराज, वरुण, कुबेर भी नहीं कर सकते।

अर्जुन गुणों में मुझसे बढ़कर है, लेकिन मुझे विश्वास है, गुरु भाई मानकर वे मेरी बात मान जाएंगे, टालेंगे नहीं। यदि नहीं, वे सदा ही तुम्हें ज्येष्ठ मानकर तुम्हारे अनुकूल कार्य भी करेंगे। यही तुम यह प्रस्ताव स्वीकार कर लोगे, तो मैं कर्ण को भी युद्ध से विरत कर दूंगा। और यदि तुम अब भी युद्ध रोक दोगे तो तुम्हारे द्वारा संसार का बड़ा भारी कल्याण होगा।''

इस प्रकार जब अश्वत्थामा से दुर्योधन ने ऐसा सुना तो वह मन-ही-मन खिन्न हो गया और कहा– ''मित्र! तुम जो कह रहे हो, वह सब सही है कि इस दुर्बुद्धि भीमसेन ने दु:शासन को मार डालने के बाद जो बात कही थी, वह मेरे हृदय में एक कांटे की तरह चुभी हुई है। ऐसी दशा में कैसे मैं संधि की बात सोच सकता हूं, और कैसे शांति मिल सकती है? मेरा हृदय विद्रोह और प्रतिकार की ज्वाला में जल रहा है। मैं तो युद्ध बंद करने की जगह अब तो मरना ही श्रेयस्कर समझता हूं। अब तो कर्ण से भी तुम्हें युद्ध बंद करने की बात नहीं कहनी चाहिए। अर्जुन इस समय थक गए हैं, अत: कर्ण अब उन्हें बलपूर्वक मार डालेगा।''

अश्वत्थामा से ऐसा कहते हुए उसने उसे अनुनय-विनय के द्वारा प्रसन्न कर लिया और अपने सैनिकों से कहा– ''अरे तुम बाण लिए चुप कैसे बैठे हो? शत्रुओं पर धावा बोलकर उन्हें मार डालो।''

इसी बीच में श्वेत घोड़ों के रथ पर सवार कर्ण और अर्जुन युद्ध के लिए आमने-सामने आकर डट गए। दोनों ने एक-दूसरे पर महान दिव्यास्त्रों का प्रहार आरंभ किया। दोनों के ही सारथी और घोड़ों के शरीर बाणों से बिंध गए। रक्त की धारा बहने लगीं वे अपने वज्र के समान बाणों से इंद्र और वृत्रासुर की भांति एक-दूसरे पर प्रहार कर रहे थे।

उस समय दोनों ओर की ही सेनाएं भय से कांप रही थीं। इतने में ही कर्ण ने मतवाले हाथी की भांति अर्जुन को मारने की इच्छा से अस्त्र चला दिया।

यह देखकर सैनिकों ने चिल्लाकर कहा– ''अर्जुन! अब देर करना बेकार है। कर्ण सामने है, इसे छेद डालो। इसका मस्तक उड़ा दो।''

इसी प्रकार कर्ण के पक्षधर भी उसे अर्जुन को मारने के लिए उकसाने लगे।

कर्ण और अर्जुन की घनघोर बाण वर्षा से सारा आकाश ढक गया। उसमें तनिक भी जगह खाली नहीं रही। कौरवों और सोमकों को चारों ओर बाणों का जाल-सा फैला दिखाई दिया। चारों ओर घोर अंधकार छा गया। बाणों के सिवा और कुछ भी दिखाई नहीं पड़ रहा था। वहां युद्ध करते समय वीरता, अस्त्र संचालन, माया, बल तथा पुरुषार्थ में कभी कर्ण बढ़ जाता था, कभी अर्जुन।

दोनों ही एक-दूसरे की कमी देखकर भीषण प्रहार कर रहे थे। उस समय अंतरिक्ष में खड़े प्राणी कर्ण और अर्जुन दोनों की ही प्रशंसा कर रहे थे।

अभी ऐसा द्वंद्व मचा ही था कि कहीं से पातालवासी अश्वसेन नाग जो अर्जुन से वैर मानता था, कर्ण और अर्जुन का युद्ध होता जान, बड़े वेग से वहां आ पहुंचा और अर्जुन से बदला लेने का यह उपयुक्त समय जानकर बाण का रूप बनाकर वह कर्ण के तरकस में समा गया। उस युद्ध में जब कर्ण अर्जुन से बढ़कर पराक्रम न दिखा सका, तब उसे अपने सर्पमुख बाण की याद आई। वह बाण बड़ा भयंकर था। आग में तपाया होने के कारण वह सदा देदीप्यमान रहता था।

कर्ण ने अर्जुन को ही मारने के लिए उसे बड़े यत्न से तथा बहुत दिनों से सुरक्षित रखा था। कर्ण उसकी नित्य ही पूजा करता था। उसी बाण को धनुष पर चढ़ाकर अर्जुन की ओर निशाना ठीक किया, परंतु उस बाण के धोखे में अश्वसेन नाग ही उस धनुष पर चढ़ चुका था।

यह देखकर इंद्रादि लोकपाल हाय-हाय करने लगे। जब मद्रराज शल्य ने उस भयंकर बाण को धनुष पर चढ़ा देखा तो कर्ण से कहा– ''तुम्हारा यह बाण शत्रु के कंठ में नहीं लगेगा।''

सोच-विचार कर निशाना ठीक करो जिससे यह मस्तक काट सके। कर्ण की आंखें यह सुनकर क्रोध से उदीप्त हो उठीं और बोला– ''कर्ण दो बार निशाना नहीं साधता, मेरे जैसे वीर कपटपूर्वक युद्ध नहीं करते।'' यह कहते हुए कर्ण ने सर्पमुखी बाण छोड़ दिया और कहा, अर्जुन अब तू मारा गया।

कर्ण के धनुष से छूटा वह बाण अंतरिक्ष में पहुंचते ही प्रज्ज्वलित हो उठा। उसे वेग से आते देख भगवान कृष्ण ने खेल-सा करते हुए अपने रथ को तुरंत पैर से दबा दिया। भार पड़ने से रथ के पहिए जमीन में धंस गए। घोड़ों के घुटने पृथ्वी पर टिक गए।

कर्ण का यह बाण कृष्ण की चाल से रथ नीचा हो जाने के कारण अर्जुन के कंठ में न लगकर मुकुट में लगा। वह मस्तक से नीचे जा पड़ा। अर्जुन का वह मुकुट पृथ्वी, अंतरिक्ष, स्वर्ण और वरुण लोक में भी विख्यात था।

अर्जुन ने दैत्यों को मारने की इच्छा से जब रणयात्रा की थी, उस समय यह मुकुट अर्जुन को इंद्र ने प्रसन्न होकर प्रदान किया था। वही मुकुट कर्ण के साथ युद्ध करते समय सर्प की विषाग्नि से जीर्ण-शीर्ण होकर जमीन पर गिर पड़ा।

किरीट पर आघात कर अश्वसेन नाग पुनः कर्ण के तरकस में घुसना ही चाहता था, किन्तु कर्ण ने उसे देख लिया।

कर्ण के पूछने पर वह कहने लगा– ''तुमने अच्छी तरह सोच-विचार कर बाण नहीं छोड़ा था, इसलिए मैं अर्जुन का मस्तक नहीं काट सका, अब जरा निशाना साधकर चलाओ, फिर मैं तुम्हारे और अपने शत्रु का सिर अभी काट डालता हूं।''

कर्ण ने उस नाग से पूछा– ''तुम कौन हो?''

''मैं अश्वसेन नाम का नाग हूं। अर्जुन ने खाण्डव वन में मेरी माता का वध करके बहुत बड़ा अपराध किया है, इस कारण मेरी तथा उसकी दुश्मनी हो गई है।

''यदि स्वयं वज्रधारी इंद्र भी उसकी रक्षा करने आएं तो भी उसे यमराज के घर जाना पड़ेगा।''

''कर्ण कभी दूसरे के बल का आश्रय लेकर विजय स्वीकार नहीं कर सकता। यदि तुम्हारा संधान करने से मैं सैकड़ों अर्जुनों को मार सकूं तो भी मैं एक बाण को दो बार संधान नहीं कर

सकता, मेरे पास सर्प बाण है, उत्तम प्रयत्न है और मन में रोष भी है, इन सबके द्वारा मैं स्वयं ही अर्जुन को मार डालूंगा। तुम प्रसन्नतापूर्वक लौट जाओ।''

नागराज को कर्ण की यह उक्ति नहीं जंची। वह स्वयं ही अर्जुन का वध करने के लिए अपना भयंकर रूप प्रकट करके अर्जुन की ओर दौड़ पड़ा।

श्रीकृष्ण ने यह देखा तो कहा– ''अर्जुन! यह महान सर्प तुम्हारा शत्रु है, इसे तुरंत मार डालो।''

''पर यह कौन है मधुसूदन?''

''तुम्हें याद है खाण्डव वन में तुमने नागों को जला दिया था। इसकी मां भी उसी अग्नि का ग्रास बन गई थी। यह उसी का बदला तुम्हें मारकर लेना चाहता है।'' कृष्ण ने बताया।

यह जानकर अर्जुन ने आकाश में तिरछी गति से उड़ते हुए उस अश्वसेन को तेज किए बाणों से धराशायी कर दिया। यह देखते ही कृष्ण ने पृथ्वी में धंसे अर्जुन के रथ को दोनों भुजाओं से ऊपर उठा दिया। इसी समय कर्ण ने अर्जुन और कृष्ण पर जमकर बाण वर्षा करके उन्हें घायल कर दिया।

कर्ण ने हंसकर इस कृत्य पर जो प्रसन्नता प्रकट की वह अर्जुन सह न सका और भीषण बाणों से प्रहार करते हुए कर्ण के मर्म स्थानों को बींध डाला। चोट-पर-चोट खाकर कर्ण अत्यंत आहत हो गया और उसकी मुट्ठी खुल गई। धनुष तथा तरकस गिर पड़े और वह रथ पर ही गिरकर अचेत हो गया।

कर्ण की जब चेतना लौटी तो उसने धैर्य धारण करके अर्जुन और कृष्ण पर बाण वर्षा कर दी और उन्हें भी बींध डाला।

कृष्ण ने अर्जुन को कर्ण के बाणों से पीड़ित देखकर कहा– ''अर्जुन! अस्त्र उठाओ और निकट से प्रहार करो।'' अर्जुन ने कर्ण पर एक भयंकर बाण छोड़ने का विचार किया। इधर कर्ण

के वध का समय भी आ पहुंचा था।

उस समय काल ने अदृश्य रहकर कर्ण को ब्राह्मण के कोपवश दिए शाप की याद दिला दी। और उसके वध की सूचना देते हुए कहा, अब पृथ्वी तुम्हारे पहिए को निगलना ही चाहती है। इसी समय परशुराम द्वारा मिले ब्रह्मास्त्र की याद उसके मन से जाती रही।

पृथ्वी ने कर्ण के रथ पहिए धंसा दिए। यह देखकर एक बार फिर अर्जुन को कृष्ण ने सतर्क करते हुए बाण मारने के लिए प्रेरित किया।

अर्जुन ने अवसर देखा, मंत्र पढ़कर रौद्रास्त्र को धनुष पर चढ़ाया और उसे कर्ण पर छोड़ने का विचारा किया। इतने में कर्ण के रथ का पहिया भूमि में और अधिक धंस गया, यह देखकर वह रथ से उतर पड़ा और दोनों भुजाओं से पहिए को पकड़कर ऊपर उठाने का प्रयास करने लगा, उसने सात द्वीपों वाली इस पृथ्वी को पर्वत और वन सहित चार अंगुल ऊपर उठा दिया, मगर फंसे हुए रथ का पहिया नहीं निकल सका।

कर्ण की आंखों से आंसू बहने लगे और वह अर्जुन की ओर देखकर बोला– ''कुंतीनंदन! तुम बड़े धनुर्धारी हो, जब तक मैं यह अपना फंसा पहिया ऊपर न निकाल लूं तब तक तुम क्षण-भर के लिए ठहर जाओ।''

कर्ण की बात पर अर्जुन की कोई प्रतिक्रिया हो, इससे पूर्व ही भगवान श्रीकृष्ण ने उससे कहा– ''राधानंदन! यह सौभाग्य की बात है, इस समय तुम्हें धर्म की बात याद आ रही है। कर्ण! पाण्डवों के वनवास का तेरहवां वर्ष बीत जाने पर भी जब तुमने उनका राज्य नहीं लौटाने दिया, उस समय तुम्हारा धर्म कहां चला गया था। तुम्हारे ही परामर्श से दुर्योधन ने भीमसेन को विष खिलाया था, उन्हें सांपों से डसवाया, उस समय तुम्हारा धर्म कहां था। भरी सभा में दु:शासन के वश में कातर पुकार कर रही रजस्वला द्रौपदी को लक्ष्य करके तुम्हारे उपहास करते समय यह धर्म कहां चला गया था सूतपुत्र! शायद तुम्हें याद भी है या नहीं, तुमने द्रौपदी से कहा था, पाण्डव नष्ट हो गए, सदा के लिए नर्क में पड़ गए। अब तू किसी दूसरे पति का वरण कर ले। यह कहते

हुए तुमने जिस प्रकार कुलवधू को तिरस्कृत, लज्जित और अपमानित किया था, तुम्हें तब धर्म का स्मरण भी नहीं रहा होगा? राज्य के लोभ से तुमने शकुनि की सलाह पर पाण्डवों को दुबारा जुए के लिए बुलवाकर वनवास में भटकने के लिए बाध्य कर दिया, क्या तब भी तुम्हें धर्म याद आया था? और जब अभिमन्यु को चक्रव्यूह में फंसाकर सातों महारथियों ने उस निरीह अकेले की हत्या की थी, तब तुम्हारा धर्म क्या नदी में स्नान करने चला गया था? क्या यह धर्म था ही नहीं। हे कर्ण! आज तुम धर्म की दुहाई कैसे दे सकते हो, तुम किस धर्म की बात कर रहे हो।''

कर्ण यह सुनकर बड़े वेग से अर्जुन के साथ युद्ध करने लगा, किन्तु अर्जुन ने एक ही ब्रह्मास्त्र से, जिसे भगवान आशुतोष ने उसे दिया था, कर्ण का मस्तक धड़ से अलग कर दिया।

अर्जुन ने कर्ण को मार गिराया। यह देख पाण्डव पक्ष के योद्धाओं में प्रसन्नता और उन्माद की लहर दौड़ गई। श्रीकृष्ण, अर्जुन, नकुल, सहदेव ने भी प्रसन्नता में अपने-अपने शंख बजा दिए।

इस प्रकार जब कर्ण मारा गया और कौरव सेना भाग खड़ी हुई तो भगवान श्रीकृष्ण ने प्रसन्नतापूर्वक अर्जुन को गले लगाते हुए कहा– ''हे पार्थ! इंद्र ने वृत्तासुर को मारा था और तुमने कर्ण को मार गिराया है। आज से संसार के लोग वृत्तासुर वध की तरह ही कर्ण वध की कथा भी सुनेंगे।

''हे अर्जुन! तुम बहुत दिनों से कर्ण का वध करना चाहते थे, आज तुम्हारी यह इच्छा भी पूरी हो गई। अब तुम धर्मराज को यह समाचार सुनाकर उनके ऋण से भी उऋण हो जाओ। जब तुम्हारा और कर्ण का भयंकर युद्ध हो रहा था, तब वे युद्ध देखने के लिए आए भी थे, परंतु अधिक घायल होने के कारण अधिक देर तक रणभूमि में ठहर नहीं सके। अब हमें उनके पास चलना चाहिए।''

अर्जुन ने कृष्ण की बात सुनकर अपना रथ छावनी की ओर मोड़ दिया। छावनी पहुंचकर उन्होंने देखा कि राजा पलंग पर सो रहे थे, दोनों ने राजा को प्रणाम किया। उन दोनों की प्रसन्नता देखकर युधिष्ठिर ने यह समझ लिया कि कर्ण मारा गया है और हर्षातिरेक से उनके आंसू निकल

पड़े। फिर उन दोनों को छाती से लगाकर युद्ध का समाचार पूछने लगे। तब भगवान श्रीकृष्ण ने युद्धभूमि का सारा हाल युधिष्ठिर को सुनाया और अंत में कर्ण के मरने का समाचार बताया। इसके बाद कृष्ण ने हाथ जोड़कर कहा– ''महाराज! यह तो बड़े सौभाग्य की बात है कि आप, भीमसेन, अर्जुन तथा नकुल-सहदेव सभी कुशल से हैं। महारथी कर्ण मारा गया और आपकी विजय हो गई है।''

कृष्ण ने बताया– ''आज सूतपुत्र के सारे शरीर में बाण चुभे हुए हैं और वह भूमि पर पड़ा हुआ है। इस अवस्था में आप अपने शत्रु को चलकर देख तो लीजिए। अब तो आप इस पृथ्वी का अकंटक राज्य का भोग कीजिए।''

श्रीकृष्ण की बात सुनकर युधिष्ठिर बहुत ही प्रसन्न हुए और बोले– ''यह तो बड़े ही आनंद की बात हुई है। आप सारथी थे, तभी अर्जुन कर्ण को मार सके हैं, यह तो आपका ही प्रसाद है।'' यह कहते हुए युधिष्ठिर ने कृष्ण की दाहिनी भुजा पकड़ ली, फिर बोले कि नारद ने मुझे बताया था कि अर्जुन और कृष्ण पुरातन नर-नारायण ऋषि हैं। व्यासजी ने भी यही बताया था। हे कृष्ण! आपकी ही कृपा से अर्जुन शत्रुओं का मुकाबला करके विजय पाते चले गए हैं। आपने जिस दिन युद्ध में अर्जुन का सारथी होना स्वीकार किया था, उसी दिन यह निश्चय हो गया था कि विजय हमारी ही होगी। जब भीष्म, द्रोण तथा कर्ण जैसे वीर आपकी बुद्धि से मारे जा चुके हैं तो अन्य सभी लोगों को तो मैं मरे हुए समान ही मानता हूं।''

ऐसा कहते हुए युधिष्ठिर सोने से सजाए हुए रथ पर बैठकर कृष्ण और अर्जुन के साथ रणभूमि देखने के लिए चल दिए। वहां पर उन्होंने देखा कि कर्ण सैकड़ों बाणों से छिदा हुआ पृथ्वी पर पड़ा है। उस समय सुगंधित तेल से भरकर हजारों सोने के दीपक जलाए गए। उसी के प्रकाश में सब लोगों ने कर्ण को देखा, उसका कवच छिन्न-भिन्न हो गया था और उसका शरीर बाणों से बिंध गया था।

कर्ण को पुत्र सहित मरा हुआ देखकर युधिष्ठिर ने कृष्ण और अर्जुन से कहा– ''हे गोविंद! आप वीर विद्वान होने के साथ ही मेरे स्वामी हैं। आपसे सुरक्षित रहकर आज मैं सचमुच ही अपने भाइयों के साथ राजा हो गया। कर्ण को मरा हुआ सुनकर वह दुरात्मा दुर्योधन अब राज्य और जीवन दोनों से ही निराश हो जाएगा। आपकी कृपा से हम लोग कृतार्थ हो गए। यह तो बहुत प्रसन्नता की बात है कि गाण्डीवधारी अर्जुन की विजय हो गई है।''

इस प्रकार राजा युधिष्ठिर ने श्रीकृष्ण और अर्जुन की प्रशंसा की। उस समय नकुल, सहदेव, भीमसेन, सात्यकि, धृष्टद्युम्न और शिखण्डी ने तथा पाण्डव, पांचल और संजय योद्धाओं ने 'महाराजा का अभ्युदय' हो, ऐसा कहकर युधिष्ठिर का सम्मान किया। फिर वे कृष्ण और अर्जुन का गुणगान करते हुए प्रसन्नतापूर्वक अपने शिविर को चले गए।

कौरवों की विशाल सेना का इस प्रकार पतन देखकर अर्जुन ने श्रीकृष्ण से कहा– ''जनार्दन! आप घोड़ों को हांकिए और इस सैन्य सागर में प्रवेश कीजिए। आज मैं तीखे बाणों से शत्रुओं का संहार कर डालूंगा। इस संग्राम को आरंभ हुए आज अठारह दिन हो गए। कौरवों के पास समुद्र जैसी अपार सेना थी, जो हमारे पास आकर गाय के खुर जैसी हो गई है।

मुझे तो यह आशा थी कि पितामह भीष्म के मारे जाने पर दुर्योधन संधि कर लेगा, परंतु उस मूर्ख ने ऐसा नहीं किया। भीष्मजी ने तो उसे सच्ची और उसके हित की बात बताई थी, लेकिन बुद्धि मारे जाने के कारण उसने उसे स्वीकार नहीं किया। अब तो आचार्य द्रोण, कर्ण और विकर्ण के मारे जाने पर बहुत थोड़ी-सी सेना ही बची, फिर भी युद्ध बंद नहीं हुआ। भूश्रिवा, शल्य, शाल्व, अवंती, जयद्रथ, सोमदत्त, भगदत्त आदि वीरों के मारे जाने पर भी वह संहार रुक नहीं सका। भीमसेन के हाथों से भी अनेक वीर मारे गए हैं। यह देखकर भी लड़ाई बंद नहीं हुई।''

अर्जुन ने आगे कहा– ''जिसको अपने हित और अहित का ज्ञान ही नहीं है, उससे किसी भी प्रकार की अपेक्षा करना व्यर्थ है। आपने भी तो उससे पाण्डवों से संधि करने के लिए कहा था, लेकिन उसके मन में यह बात आई ही नहीं। जब उसने आपकी ही बात नहीं सुनी तो और किसी

की तो वह क्या सुनेगा। जिसने संधि के विषय में कहने पर भीष्म, द्रोण और विदुर की भी बात टाल दी, उसे राह पर लाने के लिए अब कौन-सी दवा है। उसने तो अपने बूढ़े पिता की बात नहीं मानी, हित की बात बताने वाली माता का अपमान किया, उसे और किसी की बात कैसे अच्छी लगेगी। ऐसा लगता है कि दुर्योधन का तो जन्म ही इस कुल का नाश करने के लिए हुआ है।''

अर्जुन ने श्रीकृष्ण को बताया– ''महात्मा विदुर ने मुझसे कई बार कहा था कि दुर्योधन अपने जीते-जी तुम लोगों का राज्य भाग नहीं देगा। सदा ही तुम्हारी बुराई किया करेगा। उसको युद्ध के अलावा किसी भी प्रकार जीतना असंभव है। आज ये सारी बातें सत्य लग रही हैं, क्योंकि जिस मूर्ख ने भगवान परशुराम के मुख से यथार्थ और हितकर वचन सुनकर भी उनकी ही अवहेलना कर दी, वह तो निश्चय ही विनाश के मुख में स्थित है।

''जब दुर्योधन ने जन्म लिया था तो बहुत से सिद्ध पुरुषों ने कहा था कि इस दुरात्मा के कारण क्षत्रिय कुल का महान संहार होगा। यह सत्य ही है। उसी के कारण तो यह महान राजाओं का संहार हुआ है। अत: आज मैं समस्त कौरव सेना का संहार करूंगा, आप मुझे दुर्योधन की सेना में ले चलिए, उसकी सेना को मैं अपने तीखे बाणों से समाप्त करूंगा।''

घोड़ों की बागडोर लिए अर्जुन ने तब श्रीकृष्ण से ये बातें कहीं तो कृष्ण ने घोड़े युद्धभूमि की ओर बढ़ा दिए और निर्भय होकर शत्रु की सेना में प्रवेश कर गए। उस समय अर्जुन के सफेद घोड़े चारों ओर दिखाई दे रहे थे। फिर तो जैसे बादल पानी बरसाता है, उसी प्रकार अर्जुन के बाणों की बरसात होने लगी। उनके बाणों से योद्धा कवच फाड़कर वज्र के समान चोट करते हुए धरती पर गिर जाते थे। अर्जुन के बाणों पर उनका नाम खुदा था। जिस प्रकार धधकती हुई आग घास की ढेरी को जला डालती है, उसी प्रकार अर्जुन भी शत्रु सैनिकों को भस्म करने लगे। अनेक प्रकार के सायकों की वर्षा करके उन्होंने अकेले ही शत्रु सेना का संहार कर डाला।

दुर्योधन और सुदर्शन धृतराष्ट्र के ये दो ही पुत्र बचे थे। ये दोनों अपने घुड़सवार के बीच खड़े थे। दुर्योधन को वहां खड़ा देखकर वासुदेव कृष्ण ने कहा– ''अर्जुन! अब शत्रुओं के अधिकांश

लोग मारे जा चुके हैं, वह देखो! सात्यकि संजय को कैद करके ला रहा है। उधर कृपाचार्य, कृतवर्मा और अश्वत्थामा, दुर्योधन को छोड़कर युद्ध में डटे हुए हैं और वह है दुर्योधन, जो अपनी सेना को व्यूह बनाकर खड़ा है। कौरव पक्ष के योद्धा तुम्हें आया देखकर जब तक भाग नहीं जाते, उसके पहले ही तुम दुर्योधन को मार डालो। इसकी सेना बहुत थक गई है, इसलिए इस समय आक्रमण करने से यह पापी छूटकर नहीं जा सकता।''

श्रीकृष्ण की बात सुनकर अर्जुन ने कहा– ''हे माधव! धृतराष्ट्र के सभी पुत्र तो भीमसेन के द्वारा मारे जा चुके हैं, ये दो ही बचे हैं, ये भी नहीं रह जाएंगे। शकुनि की सेना में भी पांच सौ घुड़सवार, दो सौ रथी, सौ से अधिक हाथी और तीन हजार पैदल बच गए हैं। दुर्योधन की सेना में अश्वत्थामा, कृपाचार्य, त्रिगर्तराज, उलूक, शकुनि, कृतवर्मा आदि योद्धा बचे हैं, बाकी सभी मारे गए। अब इनका भी काल आ ही गया है। आज जो मेरे सामने आकर भाग नहीं जाएंगे, वे चाहे देवता ही क्यों न हों, उन सबको मार डालूंगा। आज तो सारा झगड़ा ही समाप्त हो जाएगा। दुर्योधन भी यदि मैदान छोड़कर नहीं भाग गया तो अपने प्राणों से हाथ धो बैठेगा। आप घोड़े बढ़ाइये, मैं सबको अभी मारे देता हूं।''

अर्जुन के कहने पर कृष्ण ने दुर्योधन की सेना की ओर घोड़े बढ़ाए। भीम और सहदेव ने भी अर्जुन का साथ दिया। तीनों ही महारथी दुर्योधन को मारने के लिए सिंहनाद करते हुए आगे बढ़े। उस समय सुदर्शन ने भीमसेन का सामना किया, सुशर्मा और शकुनि अर्जुन से लड़ने लगे। दुर्योधन घोड़े पर सवार होकर सहदेव से जा भिड़ा। उसने फुर्ती के साथ सहदेव के सिर पर एक प्रास से प्रहार किया। सहदेव उस चोट से मूर्च्छित होकर रथ के पिछले हिस्से में बैठ गया, उसका सारा शरीर रक्त से तर हो गया। जब कुछ समय पश्चात् उसे होश आया तो वह क्रोध में भरकर दुर्योधन पर तीखे बाणों की बौछार करने लगा।

उधर अर्जुन भी घोड़ों की पीठ पर बैठे हुए योद्धाओं के मस्तक काट-काट कर गिराने लगे। उन्होंने बहुत से बाण मारकर सारी सेना का संहार कर दिया। उसके पश्चात् त्रिगर्तों की सेना पर

धावा किया। उन्हें आया देखकर सारे त्रिगर्त एक साथ होकर अर्जुन और कृष्ण पर बाणों की वर्षा करने लगे। तब अर्जुन ने सत्यकर्मा और एक क्षुरप्र से घायल करके उसके रथ की ईषा को काट डाला और फिर एक क्षुरप्र से उसका सिर धड़ से अलग कर दिया। इसके बाद अर्जुन ने सुशर्मा, सत्येषु आदि सभी को मारकर बची हुई सेना में प्रवेश किया।

दूसरी ओर भीमसेन ने बाणों की वर्षा करके सुदर्शन को ढक दिया और फिर एक तीखे बाण से उसका सिर धड़ से अलग कर दिया। उसके पश्चात् उसने तेज किए हुए बाणों से एक ही क्षण में सबका संहार कर दिया।

पांचाल और पाण्डव प्रसन्न होकर अपने शौर्य के संबंध में अलौकिक बातें सुना रहे थे। उस समय भगवान श्रीकृष्ण ने कहा– ''राजाओं! मरे हुए शत्रु को अपनी कठोर बातों से फिर मारना उचित नहीं है। यह पापी तो उसी समय मर चुका था जब लज्जा को तिलाजंलि दे लोभ में फंसा और पापियों की सहायता लेकर हित चाहने वालों की आज्ञा का उल्लंघन करने लगा। विदुर, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, भीष्म और संजय ने अनेक बार अनुरोध किया, फिर भी उसने पाण्डवों की पैतृक संपत्ति नहीं दी। अब तो यह मित्र कहने के योग्य भी नहीं है और न ही शत्रु। यह तो महानीच है। काठ के समान जड़ है। इसे वचन रूपी बाणों से बेधना भी उचित नहीं है। अब तो सब लोग रथ पर बैठो और छावनी चलो।''

श्रीकृष्ण की बात सुनकर सभी राजा अपने-अपने शंख बजाते हुए अपने-अपने शिविर की ओर चले दिए। आगे-आगे पाण्डव थे, उनके पीछे सात्यकि, धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, द्रौपदी के पुत्र तथा दूसरे योद्धा चल रहे थे। सब लोग पहले तो दुर्योधन की छावनी पर गए, जो राजा के न होने से श्रीहीन दिखाई दे रही थी।

पाण्डवों के वहां पहुंचने पर दुर्योधन के सेवक हाथ जोड़कर उपस्थित हो गए। सभी पाण्डव दुर्योधन की छावनी में जाकर अपने-अपने रथों पर से उतर गए। अंत में कृष्ण ने अर्जुन ने कहा

कि तुम स्वयं उतरकर अपने अक्षय तरकश और धनुष को भी उतार लो, इसके बाद मैं उतारूंगा। ऐसा करने में तुम्हारी भलाई है।

अर्जुन ने वैसा ही किया जैसा कृष्ण ने कहा था। अर्जुन के उतरने के बाद कृष्ण ने घोड़ों की बागडोर छोड़ दी और स्वयं भी रथ से उतर गए।

कृष्ण के रथ से उतरने के बाद उस रथ पर बैठा वह दिव्य कपि भी अंतर्धान हो गया और वह विशाल रथ बिना आग लगाए ही प्रज्ज्वलित हो उठा। उसके सारे उपकरण जलकर खाक हो गए। यह देखकर पाण्डवों को बड़ा ही आश्चर्य हुआ।

अर्जुन ने हाथ जोड़कर भगवान के चरणों में प्रणाम करते हुए पूछा– ''गोविंद! यह क्या आश्चर्यजनक घटना हो गई। एकाएक रथ कैसे जल गया?''

श्रीकृष्ण ने कहा– ''अर्जुन! लड़ाई में अनेक अस्त्रों के आघात से यह रथ तो पहले ही जल चुका था। मेरे बैठे रहने के कारण यह भस्म नहीं हुआ था। जब तुम्हारा सारा काम पूरा हो गया, तब अभी मैंने इस रथ को छोड़ा है, इसलिए यह अब भस्म हुआ है।''

इसके बाद भगवान कृष्ण ने युधिष्ठिर को गले लगाया और बोले– ''हे कुंतीनंदन! आपके शत्रु परास्त हो गए, आपकी विजय हो गई। यह तो सौभाग्य की बात है। आप सभी भाई इस विनाशकारी संग्राम से बच गए। अब आपको आगे क्या करना है, इस पर विचार कर लीजिए।

''और हे राजन! जब मैं आपके पास आया तो आपने मधुपर्क देकर कहा था कि अर्जुन तुम्हारा भाई और मित्र है, हर मुश्किल में उसे बचाना। उस दिन आपको मैंने हां कह दी थी। आपके अर्जुन की मैंने पूरी प्रकार से रक्षा की है और उसे भाइयों सहित इस संग्राम से छुटकारा दिला दिया। अर्जुन सुरक्षित हैं, राजन!''

श्रीकृष्ण की बात सुनकर युधिष्ठिर कहने लगे– ''द्रोण और कर्ण ने जिस ब्रह्मास्त्र का प्रयोग किया था, उसे आपके सिवा दूसरा कौन सह सकता था। वज्रधारी इंद्र भी उसका सामना नहीं कर

सकते थे। आपकी ही कृपा से संशप्तक परास्त हुए हैं। अर्जुन ने इस युद्ध में कभी अपनी पीठ नहीं दिखाई। यह भी तो आपका ही प्रताप है। आपके द्वारा तो अनेक कार्य सिद्ध हुए हैं। महर्षि व्यास ने तो मुझसे पहले ही कहा था कि जहां धर्म है, वहां श्रीकृष्ण हैं और जहां श्रीकृष्ण हैं, वहां विजय है।''

दण्डनीति और अर्जुन

माता कुंती से कर्ण के जन्म का रहस्य जानकर धर्मराज युधिष्ठिर की आंखों में आंसू भर आए और वे शोक से व्याकुल होकर कहने लगे– ''मां! तुमने यह रहस्यमयी बात हमसे छिपा रखी थी, इसीलिए आज मुझे कष्ट का अनुभव हो रहा है।''

धर्मराज ने दु:खी होकर संसार की सब स्त्रियों को शाप दे दिया कि आज से कोई भी स्त्री गुप्त बात को छिपाकर नहीं रख सकेगी। इसके पश्चात् वे अपने मरे हुए सभी संबंधियों को याद करके अर्जुन से कहने लगे– ''अर्जुन! यदि हम लोग वृष्णिवंशी तथा अंधकवंशी क्षत्रियों के नगर में जाकर भिक्षा से अपना जीवन निर्वाह कर लेते तो आज अपने कुटुम्ब की यह दशा न होती।

''क्षमा, दम, शौच, वैराग्य, अहिंसा और सत्य बोलना ये वनवासी लोगों के श्रेष्ठ धर्म हैं परंतु हम लोगों ने लोभ और मोह के कारण राज्य पाने की इच्छा से दम्भ और मान का आश्रय लेकर इन सभी बातों को त्याग दिया है। इसी कारण हम इतनी घोर विपत्ति में फंस गए हैं। अब तो हमें कोई तीनों लोकों का राज्य देकर भी प्रसन्न नहीं कर सकता।''

युधिष्ठिर अर्जुन से बोले– ''हमने उस पृथ्वी पर राज्य पाने के लिए कितने ही राजाओं की हत्या की है और अपने बंधु-बांधवों का वध किया है, अरे जिन बांधवों का वध हमने किया है, उन्हें तो सारी पृथ्वी, स्वर्ग का ढेर, और बहुत-सी गाय, घोड़े मिलने पर भी नहीं मारना चाहिए था। यह शोक तो अब हमें चैन नहीं लेने देता।

सुना है कि मनुष्य का किया हुआ पाप शुभकर्मों के आचरण से, दूसरों को कहने से, पश्चातप से, दान, तप, त्याग, तीर्थयात्रा और श्रुति-स्मृति का पाठन करने से नष्ट हो जाता है। इसीलिए मैंने सारा संग्रह, राजा राज्य, सुख-भोग आदि को त्यागने का निश्चय किया है। अब मैं ममता और शोक को त्यागकर, सभी बंधनों से छूटकर जंगल में चला जाऊंगा, मुझे अब राज्य आदि सुखों से कोई मतलब नहीं है।''

धर्मराज युधिष्ठिर की इस प्रकार की बातें सुनकर अर्जुन बोले– ''महाराज! यह तो बड़े अफसोस की बात है और कायरता है जो आप अलौकिक पराक्रम प्राप्त करके, प्राप्त की हुई इस उत्तम राज्यलक्ष्मी को ठुकरा देने के लिए तत्पर हैं। आप इतने दु:खी क्यों हो रहे हैं?''

अर्जुन बोले– ''यदि आपको यह सब त्यागना ही था तो आपने क्रोध में आकर इसके लिए तमाम राजाओं की हत्या क्यों की? अपने इस समृद्धशाली राज्य का परित्याग करके जब आप घर-घर जाकर भीख मांगेंगे, उस समय संसार क्या कहेगा? ऐसा कौन-सा कारण है कि सब प्रकार के शुभकर्मों का अनुष्ठान छोड़कर आप गंवार मनुष्यों के समान भीख मांगना पसंद करते हैं।''

अर्जुन ने आगे कहा– ''इस उत्तम राजवंश में जन्म लेकर सारी पृथ्वी को अपने अधीन करके, अब आप धर्म और धन का परित्याग करके वन की ओर जा रहे हैं। यह आपकी मूर्खता नहीं तो और क्या है।

अपना सब कुछ त्यागकर तथा दूसरे दिन के लिए संग्रह न कर प्रतिदिन मांगकर खाना तो मुनियों का धर्म होता है, राजाओं का नहीं।

हे महाराज! धर्म का पालन तो धन से होता है और धन से ही धर्म भी होता है, लौकिक कामनाएं पूर्ण होती हैं। धन के बिना तो संसार के जीवों की भी जीविका नहीं चल सकती। धन से धर्म का पालन, कामना की पूर्ति, स्वर्ग की प्राप्ति, आनंद तथा शास्त्रों का अभ्यास सब कुछ संभव हो सकता है।

राजा लोग दूसरे राज्यों को जीतकर उनका धन ले आते हैं, वे उस धन से यज्ञ-अनुष्ठान आदि शुभ कर्म करते हैं।''

''हे राजन! पहले यह पृथ्वी राजा दिलीप के अधिकार में थी, उसके बाद नृग, नहुष, अम्बरीष और मान्धाता का अधिकार हुआ। अब यह आपके अधीन हुई है। अब आप सभी प्राणियों के

कल्याण के लिए अश्वमेध यज्ञ कीजिए। यही क्षत्रियों का सनातन मार्ग है और यही उनके आगे बढ़ने का रास्ता भी है।''

युधिष्ठिर बोले– ''अर्जुन! पहले तुम एकाग्रचित होकर मेरी बात ध्यान से सुनो और फिर उस पर विचार करो।

''क्या तुम्हारे कहने से मैं उस मार्ग पर न चलूं, जिस पर श्रेष्ठ पुरुष सदा से ही चलते आए हैं?

''नहीं, यह मुझसे नहीं होगा, मैं तो सांसारिक सुखों पर लात मारकर उसी मार्ग पर चलूंगा और वन में कंदमूल फल खाकर कठोर तपस्या करूंगा। सवेरे तथा शाम को स्नान करके अग्नि में आहुति डालूंगा। शरीर पर वल्कल वस्त्र धारण करूंगा और मस्तक पर जटा रखूंगा। सभी कष्टों को सहन करता हुआ अपने शरीर को बिल्कुल सुखा डालूंगा। इस राज्य का मैं क्या करूंगा।

वनवासी मुनियों के कठोर-से-कठोर नियमों का पालन करके इस शरीर की आयु समाप्त होने तक राह देखता रहूंगा।''

युधिष्ठिर बोले– ''मैं मुनि व्रत का पालन करते हुए अपने मस्तक को मुंडा लूंगा और एक-एक दिन, एक-एक वृक्ष से भिक्षा मांगकर अपने इस शरीर को दुर्बल कर दूंगा।

कभी किसी वस्तु का संग्रह नहीं करूंगा और सदा अंधे, गूंगे और बहरे की तरह अपना जीवनयापन करूंगा। किसी भी जीव की हत्या नहीं करूंगा। मैं घर-घर जाकर भिक्षा मांगूंगा। एक घर से न मिलने पर दूसरे और फिर तीसरे घर जाऊंगा। उस भिक्षा का स्वाद कैसा है, इस बात का मुझे तनिक भी ध्यान नहीं रहेगा।

मुझे न तो जीवन से प्रेम होगा और न ही मृत्यु से घबराहट। यदि एक मनुष्य मेरी एक बांह को काटता है और दूसरा उस पर चंदन लगाता है तो मेरा दोनों के प्रति समान भाव ही होगा।

हे अर्जुन! इस प्रकार वीतरागी संन्यासी का जीवन जीने से मुझे शांति मिलेगी। इस संसार में तो जन्म-मृत्यु, बुढ़ापा, बीमारी, दु:ख आदि लगे ही रहते हैं, जिस कारण यहां का जीवन कभी भी स्वस्थ नहीं रह पाता, इसलिए इसे तो त्यागना ही उचित है। आज मैंने अपनी बुद्धि के द्वारा सभी उचित और अनुचित का विचार कर ही यह निश्चय किया है कि अब मैं इस नाशवान शरीर का अंत करके इस संसार से मुक्ति पा लूंगा।''

उधर जब भीमसेन ने यह सुना कि राजा युधिष्ठिर संन्यासी होना चाहते हैं तो उसने युधिष्ठिर से कहा– ''राजन! जब आपने राजधर्म की निंदा करके यह तपस्वी जीवन जीने का निश्चय कर ही रखा था तो फिर उन बेचारे कौरवों का नाश करने से क्या लाभ हुआ?

यदि आपका यह विचार हम लोगों को पहले ही ज्ञात हो जाता तो हम लोग क्यों किसी का वध करते।

आपकी ही तरह से शरीर को त्यागने का संकल्प करके हम भी भीख मांगकर अपना निर्वाह कर लेते। तब यह भयंकर नरसंहार तो नहीं होता।

क्षत्रियों का तो यह धर्म है कि वे राज्य पर अधिकार जमा लें और यदि उसमें कोई बाधा उपस्थित करे तो उसका वध कर दें। कौरवों ने हमारे लिए राज्य प्राप्ति में बाधाएं उपस्थित कीं, इसीलिए हमें उनका वध करना पड़ा। राजा का यही धर्म है। जो कर्मों को छोड़ बैठता है, उसे कभी सिद्धि नहीं मिलती।''

''पता नहीं तुम किस धर्म की बात कर रहे हो भीम! मैं तो राजधर्म को मनुष्य धर्म से ऊपर नहीं मान सकता। जिस धर्म में मनुष्यता ही न हो, वह राजधर्म मैं कैसे स्वीकार करूं। यह युद्ध प्रारंभ से ही मुझे क्लेश पहुंचाता रहा है।''

''राजन! व्यक्ति को संसार में क्लेश तो सहने ही पड़ते हैं, चाहे वह ब्राह्मण हो या क्षत्रिय! और कर्तव्य वही तो नहीं जो व्यक्ति सोचता है, कर्तव्य वह भी है जो परिवार, परिवेश और समाज के प्रति अपेक्षित होता है।'' यह कहते हुए अर्जुन ने महाराज युधिष्ठिर को एक उदाहरण

देते हुए बताया– ''कुछ ब्राह्मण पुत्र, अभी अनुभव और व्यवहार में अपरिपक्व थे, भावुक भी थे। ज्ञान प्राप्त करने और सांसारिकता से विमोहित हो उन्होंने घरबार छोड़ दिया। संन्यास ले लिया।

भाई-बंधु, माता-पिता की सेवा से मुंह मोड़कर ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए वे ब्राह्मण पुत्र तपस्या करने के व्रत में लीन हो गए।

एक दिन भगवान इंद्रदेव एक सुनहरे पक्षी के रूप में उनके पास आए और उन बाल तपस्वी युवकों को सुनाकर कहने लगे– यज्ञ के पश्चात् अन्न खाने वाले महात्माओं ने जो कर्म किया वह दूसरे मनुष्यों से होना कठिन है। उनका मनोरथ सफल हुआ, वे धर्मात्मा पुरुष उत्तम गति को प्राप्त हुए।

पक्षी कह रहा था अपने मन की बात और वे तपस्वी युवक समझ रहे थे कि वह उनके गुणों का बखान कर रहा है। उनके मन में अपने प्रति ऐसे भाव जानकर वह पक्षी बोला– ''अरे! मैं तुम्हारी प्रशंसा नहीं कर रहा हूं मूर्खों! तुम तो जूठा खाने वाले हो, पाप के कीचड़ में फंसे हो, यज्ञ शिष्ट अन्न खाने वाले तो और ही होते हैं।''

पक्षी को कोई महासिद्ध और ज्ञानी जानकर उन ऋषियों ने कहा– ''तुम्हारी बातें सुनकर हमारी तुम पर श्रद्धा हो आई है, अत: कल्याण करने वाला साधन हमें बताओ।''

ब्राह्मणों की इस प्रकार जिज्ञासा देखकर वह पक्षी बोला– ''चौपायों में गाय, धातुओं में सोना, शब्दों में प्रणव, मनुष्यों में ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं। ब्राह्मणों में जातकर्म संस्कार वेद के द्वारा ही निर्धारित किए गए हैं। ब्राह्मण का समय-समय पर संस्कार रहना चाहिए। कर्मों का संपादन गृहस्थाश्रम में विधिपूर्वक हो पाता है। कर्म की निंदा करने वाले कुमार्गगामी होते हैं।

देव, पितर तथा ब्रह्म यज्ञ ये ही सनातन मार्ग हैं। हवन के द्वारा देवों को, स्वाध्याय द्वारा ऋषियों को तथा श्राद्ध के द्वारा पितरों को तृप्त करना चाहिए। जो देवों, ऋषियों तथा पितरों को और अतिथियों को पूर्ण तुष्ट करके पीछे खाते हैं, वे ही यज्ञ शिष्ट अन्न का भोग करते हैं।''

यह सुनकर उन ब्राह्मण तपस्वियों ने जान लिया कि वे जिस स्थिति में हैं वह हितकर नहीं हैं वह वनवास छोड़कर घर लौट आए, गृहस्थ धर्म का पालन करके सुखी जीवन व्यतीत करने लगे।

वेदों के ज्ञानी भी यही कहते हैं कि गृहस्थाश्रम सभी आश्रमों में श्रेष्ठ है। अत: हे राजन! आप राजा होकर अपने दायित्वों से मुख मोड़कर किस प्रकार सतमार्ग के अनुगामी हो जाएंगे, यह आप ही विचार करें।''

इस दृष्टि से अर्जुन बहुत व्यवहारी थे। वह जानते थे कि राष्ट्रधर्म क्या है?

युधिष्ठिर को अभी भी विचारपूर्ण मुद्रा में देखकर अर्जुन ने कहा– ''राजन! दण्ड ही सारी प्रजा का शासन तथा उनकी रक्षा करता है, सब सो जाते हैं किन्तु दण्ड जागता रहता है।

विद्वान पुरुष दण्ड को ही राजा का धर्म कहा करते हैं। यह दण्ड ही त्रिवर्ग है, यही धनधान्य की रक्षा करता है। अत: राजा होकर दण्ड धारण करना ही आपका एकमात्र धर्म है।

व्यवस्था दण्ड से ही चलती है। दण्ड ही शिथिल हो गया तो शासन डूब जाता है। मनुष्य दण्ड के भय से ही नियंत्रित रहता है, अन्यथा वह पाशविक हो जाता है।

ब्राह्मण के अपराध पर उसे वाणी से दंडित किया जाता है। क्षत्रिय को भोजन के लिए, वेतन देकर सेवा लेना उसका दण्ड है, वैश्य को आर्थिक दण्ड विधान है, शूद्र के लिए सेवा ही दण्ड है। वास्तव में दण्ड एक मर्यादा है। मनुष्य को प्रमाद से बचाने के लिए, उनके धन की रक्षा के लिए जो मर्यादा बांधी गई है, वही दण्ड है।''

अर्जुन ने दण्ड नीति का विस्तार करते हुए कहा– ''मैं नहीं मानता कि संसार में कोई अहिंसा से जीविका चलाता हो, क्योंकि प्रत्येक क्रिया में कोई-न-कोई हिंसा अवश्य है और फिर राजन! जो विधाता का विधान है उसमें मोह क्यों? आपका जिस जाति में जन्म हुआ है, उसी के अनुरूप आपको कर्म भी करना चाहिए।

दण्ड नीति के कारण ही संसार में सारे कार्य सुचारू रूप से चलते हैं। यदि दण्ड न होता तो सब जगह अंधेर मची होती। किसी को कुछ भी न सूझ पड़ता।

वेदों की निंदा करने वाले नास्तिक भी दण्ड के द्वारा सीधे रास्ते पर आ जाते हैं। वास्तव में मनुष्य के सारे काम धन के अधीन हैं तथा धन दण्ड के अधीन है।

लोक यात्रा का निर्वाह करने के लिए धर्म का प्रतिपादन किया गया है, कोई भी वस्तु ऐसी नहीं है जिसमें सब के सब गुण ही हों अथवा जो सर्वथा गुणों से वंचित हो। प्रत्येक कार्य में अच्छाई और बुराई देखी जा सकती है। अत: हे राजन! इन बातों का विचार करके आप भी धर्म का पालन कीजिए, यज्ञ कीजिए, दान कीजिए तथा प्रजा, बंधु और मित्रों की रक्षा कीजिए।''

अर्जुन के इस प्रकार महाराज युधिष्ठिर को समझाने के बाद भीम, नकुल आदि ने भी उन्हें काफी समझाया, किन्तु युधिष्ठिर तो मानते थे कि असंतोष, मद, राग, अशांति, अभिमान, बल और उद्वेग आदि पापों ने इनके मन को वशीभूत कर लिया है।

''भोगों की आसक्ति छोड़ो, बंधनमुक्त होकर शांत एवं सुखी होओ। बुद्धिमान और तपस्वी ही उत्तम गति को प्राप्त होते हैं।''

अर्जुन ने यह सुनकर कहा– ''महाराज! शायद आपको याद नहीं रहा, मिथिला के राजा जनक ने भी राज्य का परित्याग कर दिया था। उस समय उनकी रानी ने ही उन्हें समझाया था और कर्तव्य बताया था। और कहा था, महाराज! यदि मुझ पर आपकी कृपा हो तो इस पृथ्वी का पालन कीजिए, राजमहल, वस्त्र, शैया, सवारी आपके उपयोग के लिए ही हैं, उन्हें उपयोग में लाइये।

जो बराबर दूसरों से दान लेता है, जो निरंतर स्वयं ही दान करता है उनमें किसे श्रेष्ठ मानेंगे? यह तो आप ही समझ सकते हैं किन्तु संसार में साधु-संतों को अन्नादि से तुष्ट करने वाले राजा की आवश्यकता है।

यदि राजा दान करने वाला न रहे तो मोक्ष के इच्छुक महात्माओं का जीवन किस प्रकार चल पाएगा? अन्न से ही प्राणों की पुष्टि होती है, अत: अन्नदाता ही प्राणदाता होता है।''

यह सुनकर युधिष्ठिर ने अर्जुन से कहा– ''मेरे भाई! ये बड़ी-बड़ी धर्म की बातें जो तुम मुझे बता रहे हो, मैं स्वत: जानता हूं। मुझे कर्म अनुष्ठान तथा कर्म त्याग दोनों का प्रतिपादन करने वाले वेद वाक्यों का भी ज्ञान है। इसके अलावा हे अर्जुन! परस्पर विरुद्ध अर्थ का प्रतिपादन करने वाले वाक्यों का भी मैंने युक्तिपूर्वक विचार किया है, उनका तात्पर्य भी मैं विधिवत जानता हूं।

अर्जुन! तुम तो मात्र शस्त्र विद्या के ही जानकार हो और वीरों का धर्म ही पालन करते हो। शास्त्र के यथार्थ मर्म को तुम क्या जानो।

जो लोग इस रहस्य को जानते हैं, वे धर्म का निश्चय करने में भी कुशल हैं, वे भी तुम्हारी तरह मुझे उपदेश नहीं दे सकते।''

''यह आप ठीक कह रहे हैं धर्मराज! अपने अधिकार में तो आपके आदेश का पालन करते हुए लड़ना ही है, जिस उद्देश्य के लिए लड़ाई जीती वह निश्चय और उस पर पालन करना हमारा दायित्व नहीं है।

''आप स्वयं शास्त्रज्ञ हैं मैं जानता हूं राजन! किन्तु जुए के व्यवहार में, खाण्डव के स्वीकार में और युद्ध में कितने हाथ का अंतर था किन्तु हमने सदैव आपके आदेश का ही पालन किया। आज जब एक आततायी शासक और न्याय विरुद्ध चलने वाले दुरभिमानी राजा से सिंहासन को मुक्त करा लिया है तब आप धर्म के पालन में हिचक रहे हैं।

''मैं भी जानता हूं भ्राताश्री! कि आप शास्त्रज्ञ हैं, कुशल नीतिज्ञ और प्रकाण्ड पंडित हैं, किन्तु राजधर्म से आपकी अरुचि ने हम सभी का उत्साह फीका कर दिया है। आपका यह अड़ियल रुख कि आप सारी बातें करते हुए भी अपनी मथुरा अलग ही बसाना चाहते हैं, हमें कष्ट देता है। राज्य का स्वार्थ हमें भी नहीं है, लेकिन हे दण्डनायक! इस प्रजा का तो ख्याल करें।''

''हे भाई अर्जुन! तुमने भ्रातृ प्रेमवश यह जो कुछ कहा है यह उचित और न्यायसंगत ही है। इससे मुझे तुम्हारे प्रति प्रसन्नता ही हुई है। युद्ध के धर्मों में और संग्राम करने की कुशलता में तो तुम्हारा सामना करने वाला कोई नहीं है, किन्तु जो परमार्थी हैं उनके विचार में तप और त्याग दोनों ही परस्पर एक-दूसरे से श्रेष्ठ हैं।''

''और हे अर्जुन! तुम जो ऐसा समझते हो कि धन से बढ़कर कोई वस्तु नहीं है, वह ठीक नहीं है।''

''नहीं, मेरा अभिप्राय यह नहीं था राजन! सामान्यजन के बीच व्यवहार का माध्यम धन है। जन शक्ति भी नित्य की आवश्यकताओं के लिए धन पर आश्रित है। आप नहीं जानते, जो ब्राह्मण परिवार चलाता है, जीविका के लिए क्या नहीं करता। क्षत्रिय सैनिक और वीर ये सारा समूह और इनका परिवार, इनके दायित्वों का निर्वहण क्या धन के बिना संभव है।''

''और एक बात बताइये राजन! आपकी दृष्टि में क्या यही श्रेष्ठ है कि सभी लोग जंगल में तपस्या के लिए चले जाएं तो फिर इनका भरण-पोषण कौन करेगा? कभी सोचा है?''

''गृहस्थ धर्म को जो महान बताया है, वह एक-दो-चार अतिथि ही सहन कर सकता है प्रतिदिन, यदि सारे शहर में भिक्षावृत्ति पर आधारित ब्राह्मणों और संन्यासियों का ही जमावड़ा हो जाए तो नदी भी पानी पिलाने में असमर्थ हो जाएगी।

हे राजन! कर्म तो करना ही पड़ता है, उद्यम भी करना पड़ता है। अंतर यही है कि आप स्वयं को सबसे अलग करके सोच रहे हैं, अपना लोक सुधारने के लिए आप ऐसा सोच रहे हैं। जरा सोचिए जिस राज्य से आपकी विरक्ति हो रही है, उसे भी शायद हो, जिसे यह राज्य आप सौंपना चाहते हैं, फिर शासन कौन करेगा।''

''तुम बहुत उग्र हो रहे हो अर्जुन! मेरा अभिप्राय समझो। इस लोक में स्वाध्याय में लगे हुए भी अनेक धर्मनिष्ठ दिखाई देते हैं, वे तपस्वी हैं जो अंत में सनातन लोकों को प्राप्त करते हैं। वन में रहकर स्वाध्याय करके भी स्वर्ग प्राप्त कर लेते हैं। कोई भद्र पुरुष इंद्रियों को अपने

विषयों से रोककर और विवेक जनित अज्ञान से छूटकर देवयान मार्ग के द्वारा त्यागियों का लोक प्राप्त कर लेते हैं।

और कोई तेजवान दक्षिण लोक से पुण्यमार्गी हो जाते हैं, किन्तु मोक्षमार्गी पुरुषों की गति तो अनिवर्चनीय है। अत: योग ही सब साधनों में प्रधान माना गया है, उसका स्वरूप जानना बहुत कठिन है। विद्वान लोग सार और असार वस्तु में भेद करके विवेक बुद्धि से लगातार विचारवान रहते हैं और इसी रूप से मुक्त हो जाते हैं। तुम नहीं जानते अर्जुन! यह आत्म तत्व अत्यंत सूक्ष्म है।''

इसके पश्चात् महाराज युधिष्ठिर को स्वयं व्यासजी ने तथा कृष्ण ने समझाया। तब जाकर युधिष्ठिर अपने आसन से उठे। उनके पीछे रथ पर युयुत्सु चला।

आगे एक पालकी में धृतराष्ट्र और गांधारी जा रहे थे, इनके पीछे कुंती, द्रौपदी तथा अन्य स्त्रियां आ रही थीं।

यह सवारी गाजे-बाजे के साथ हस्तिनापुर जा रही थी।

'पाण्डव आ गए', 'पाण्डव आ गए' यह सुनकर सारे पुरवासी उनके दर्शनों के लिए दौड़ पड़े । सबकी दृष्टि गाण्डीवधारी अर्जुन पर टिकी हुई थी। पुरवासियों को विश्वास था कि जिस ओर अर्जुन है जीत उसी की होगी।

कुछ नगर श्रेष्टियों ने यात्रा रोककर महाराज का स्वागत करते हुए कहा– ''बड़े सौभाग्य की बात है, आपने धर्म बल से अपना खोया राज्य पा लिया। आप सौ वर्ष तक राजा रहें।''

महाराज इन्हीं सद्-सद् वचनों के बीच महल में प्रविष्ट हो गए।

अर्जुन से विदा लेकर कृष्ण का द्वारिका लौटना

शोक से मुक्ति पाकर और मानसिक चिंता छोड़कर महाराज युधिष्ठिर अपने मरे हुए बंधु-बांधवों का श्राद्ध करके, देवता और ब्राह्मणों का पूजन करके और पितामह का तथा भाई कर्ण का तर्पण करके हस्तिनापुर लौट आए।

जब चारों ओर सब प्रकार से शांति हो गई तो कृष्ण और अर्जुन को बड़ी प्रसन्नता हुई। वे दोनों अत्यंत आनंदित होकर विचित्र-विचित्र वनों में और पर्वतों के रमणीय शिखरों पर विचरने लगे। घूम-फिरकर वे फिर इंद्रप्रस्थ लौट आए। ये नर और नारायण आपस में इतना प्रेम रखते थे कि देखने पर दो शरीर और एक प्राण लगते थे।

एक दिन, बातचीत में उनके बीच ऋषियों की चर्चा हुई। भगवान कृष्ण ने, अर्जुन को उस दिन बड़ी विचित्र कथाएं सुनाईं। कृष्ण ने कहा– ''अर्जुन! धर्मराज युधिष्ठिर ने तुम्हारे बाहुबल का सहारा लेकर, भीमसेन, नकुल और सहदेव के पराक्रम से सारी पृथ्वी पर विजय पाई है। आज वे शत्रुहीन भूमंडल का राज्य भोग रहे हैं। यह निष्कंटक और बिना किसी संघर्ष में चलने वाला राज्य उन्हें धर्म के ही बल से प्राप्त हुआ है। धृतराष्ट्र के पुत्र अधर्म में रुचि रखने वाले दम्भी, लोभी, दुरात्मा थे, वे इसीलिए अपने बंधु-बांधवों सहित मारे गए। अर्जुन! तुम्हारे साथ रहने पर तो मुझे निर्जन वन में भी सुख मिलता है। फिर जहां इतने आत्मीयजन, मेरी बुआ कुंती हो, वहां की तो बात ही क्या है।

''जहां धर्मपुत्र साक्षात राजा युधिष्ठिर, महावीर भीम, नकुल-सहदेव रहते हैं, वहीं रहने में आनंद भी मिलता है।

यह तुम्हारा रमणीय सभा स्थान तो पार्थ! स्वर्ग से भी सुंदर है। यहां तुम्हारे साथ रहते हुए बहुत दिन बीत गए।''

''माधव! मैं तुम्हारा अभिप्राय कुछ-कुछ समझ रहा हूं।''

''हां, इतने दिनों तक, द्वारिका के हाल से मैं बिल्कुल ही अपरिचित रहा हूं, इसलिए पिता, मां, भाई तथा परिवार जनों की सुध भी ले ही लेनी चाहिए। क्यों पार्थ! क्या विचार है, द्वारिका जाना चाहिए। तुम यदि उचित समझो तो महाराज युधिष्ठिर से मेरे द्वारिका जाने का प्रस्ताव करो।

मैं धर्मराज से कहने में स्वयं को असमर्थ पा रहा हूं। मेरे प्राणों पर संकट भी आ जाए तब भी मैं युधिष्ठिर का अप्रिय नहीं कर सकता, फिर द्वारिका जाने के कष्टदायी समाचार को उन्हें कैसे कह सकता हूं। यह बात तो तुम्हें ही करनी होगी धनंजय! उनका हृदय दुखेगा।''

''और पार्थ! मैं यह सत्य कह रहा हूं, मैंने जो भी किया या कहा है, वह सब तुम्हारी प्रसन्नता के लिए और तुम्हारे हित के लिए ही किया है। तुम समझ ही गए होगे, मेरे रहने का प्रयोजन अब पूरा हो चुका है। धृतराष्ट्र पुत्र दुर्योधन अपने सहायकों और संपूर्ण सेना सहित मारा गया तथा यह समुद्र, यह पृथ्वी, पर्वत, कानन वन सहित युधिष्ठिर के अधीन हो गई। अत: अब तुम मेरे साथ चलकर महाराज से मुझे द्वारिका जाने की आज्ञा दिला दो।''

''यह गुरुतर कार्य आप मुझे सौंप रहे हैं मधुसूदन! यह भी सोचा है कि मुझे इस समाचार से कितना कष्ट पहुंच रहा होगा।

आपने अपनी बात कह दी, मेरे बारे में कुछ नहीं सोचा?''

''सोचेंगे पार्थ! सोचेंगे, पहले तुम चलो और महाराज युधिष्ठिर को इस गमन के लिए तैयार करो। अरे, तुम तो मेरे सखा हो, मेरे साथ द्वारिका चलो, घूम आना और फिर सुभद्रा भी काफी समय से माता-पिता से नहीं मिली है, वह भी कुछ समय के लिए वहां हो आएगी।

मेरा जो भी धन; संपत्ति है वह, और मेरा यह शरीर सभी कुछ तो धर्मराज के लिए समर्पित है, वे मेरे परमप्रिय और माननीय हैं। यहां तुम्हारे साथ घूमने, विचरने, मन बहलाने के अतिरिक्त मेरा यहां रहने का प्रयोजन और कुछ रह भी तो नहीं गया है।''

श्रीकृष्ण के ऐसा कहने पर अर्जुन ने उनकी बात का आदर करते हुए बड़े दुःख के साथ उनके जाने का प्रस्ताव स्वीकार किया।

''हे कृष्ण! जब तुम जा ही रहे हो तो मेरी एक जिज्ञासा तो शांत करो। जब युद्ध का अवसर सामने था और मैं पितामह व गुरुजन के मोह में ग्रस्त हो गया था, तब मुझे आपने अपने ईश्वरीय रूप और ज्ञान का उपदेश दिया था। वह सब बुद्धि दोष से मैं भूल गया हूं, कृपया अब द्वारिका जाने से पूर्व वह मुझे पुनः बताएं।''

अर्जुन के ऐसा कहने पर कृष्ण ने उन्हें अपने गले से लगा लिया और कहा– ''अर्जुन! तब मैंने तुम्हें अत्यंत गोपनीय विषय को बताया था। अपने स्वरूप भूत धर्म और सनातन पुरुषोत्तम तत्व का परिचय दिया था। शुक्ल और कृष्ण पक्ष की गति का निरुपण करते हुए नित्य लोकों का वर्णन भी किया था, किन्तु तुमने अपनी नासमझी के कारण वह सब भुला दिया। आज मुझे इस बात का बड़ा खेद हो रहा है। इन बातों का अब पूरा-पूरा स्मरण होना भी बड़ा कठिन है।

पाण्डुनंदन! तुम तो बड़े श्रद्धाहीन निकले और तुम्हारी बुद्धि पर तो मुझे भरोसा था। उस योगयुक्त स्थिति में अब मेरा आना और परमात्व तत्व का वर्णन जो मैं कर चुका था, दोहराना तो कठिन है, लेकिन तुम्हें अब जो मैं कहूंगा, उसे ध्यान से सुनना और भूलना मत।

''काश्यप नाम के एक धर्मात्मा, प्राचीन समय में एक सिद्ध ब्रह्मर्षि के पास गए थे। उस धर्मात्मा ने उनके निकट जाकर प्रणाम किया और गुरु मानकर उनकी सेवा में लग गए। बड़ी श्रद्धा भाव से काश्यप ने उन महात्मा को संतुष्ट करके प्रसन्न किया।

''ब्रह्मर्षि ने अपने सम्मुख कठोर तपस्या करने वाले, उस मुनि काश्यप से कहा– 'बोलो तुम्हारा कौन-सा प्रिय कार्य करूं', तो काश्यप ने यही प्रश्न पूछा था कि संसारी जीव, दुखमय

संसार से किस प्रकार मुक्त होता है। इस प्रश्न का उत्तर देते हुए मुनि ने कहा– इस लोक में आयु और कीर्ति को बढ़ाने वाले जिन कर्मों का व्यक्ति सेवन करता है, शरीर प्राप्ति में वे कारण होते हैं और शरीर दहन के बाद जब वे कर्म, अपना फल लेकर क्षीण हो जाते हैं, उस समय जीव की आयु भी क्षय हो जाती है। तब जीव विपरीत कर्मों का सेवन करने लगता है और विनाश के निकट आने पर उसकी बुद्धि उल्टी हो जाती है, शरीर में दोष कुपित हो जाते हैं, प्राणनाशी रोग आक्रमण करते हैं और जीववेदना से ग्रस्त जन्म-मरण के भय से उद्विग्न रहने लगता है।

''शरीर के भीतर रहकर जो कार्य करता है, वह सनातन जीव है। अंतकाल पर तम के द्वारा जीव की ज्ञानशक्ति लुप्त हो जाती है, मर्म-स्थान अवरुद्ध हो जाते हैं और जीव के लिए कोई आधार नहीं रह जाता। वायु अपने स्थान से विचलित कर देती है, तब वह जीव आत्मा बार-बार लंबी सांस छोड़कर बाहर निकलते समय सहसा इस जड़ शरीर को कंपित कर देता है। शरीर से अलग होने पर वह अपने किए हुए पुण्य अथवा पाप कर्मों से घिरा रहता है।

''जिन्होंने यथावत अध्ययन किया है और ब्राह्मण लक्षणों से यह जान लिया है कि अमुक जीव पुण्यात्मा रहा है और अमुक जीव पापी। शास्त्र के अनुसार यह मृत्युलोक ही कर्मभूमि कहलाती है, यहीं शुभ और अशुभ कर्म करके मनुष्य कर्मफल पाता है। पुण्य कर्म वाला, उत्तम भोग और पाप करने वाला अत्रीगति पाता है।''

''हे अर्जुन! सिद्ध मुनि ने ही यह बताया कि इस संसार में किए गए शुभ और अशुभ कर्मों का फल भोगे बिना नाश नहीं होता और कर्म एक के बाद एक शरीर धारण कराकर अपना फल देते रहते हैं।

''फल देने वाला वृक्ष समय आने पर जिस प्रकार बहुत से फल देता है, उसी प्रकार शुद्ध हृदय से किए गए पुण्य का फल अधिक होता है।''

''जिस प्रकार दीपक समूचे घर में प्रकाश फैलाता है, उसी प्रकार जीव की चैतन्य शक्ति शरीर के अवयवों को प्रकाशित करती है। देहधारी जीव को, जो-जो वह शुभ-अशुभ कार्य करता है, उनका फल दूसरे लोक या दूसरे जन्म में भी भोगना पड़ता है और जब तक वह कर्म से मुक्त नहीं होता अथवा जब तक मोक्ष प्राप्त नहीं करता, तब तक यह परंपरा आरंभ रहती है। सत्कर्म पुण्य में और असत कर्म पाप में परिणत होते हैं।''

''जीवन-मरण, सुख-दु:ख, लाभ-हानि तथा प्रिय-अप्रिय में जिसकी समान वृत्ति है, जो किसी भी पदार्थ की इच्छा नहीं रखता, किसी की अवहेलना नहीं करता, जिसमें आसक्ति दूर हो गई है, धर्म, अर्थ, काम का परित्याग कर दिया है और आकांक्षाओं से रहित है। ऐसे जीव को मुक्त समझना चाहिए और उसे ही सनातन परब्रह्म परमात्मा प्राप्त होते हैं।''

''हे अर्जुन! तुमने मेरे इस उपदेश को एकाग्रचित होकर सुना है, ऐसा मुझे विश्वास है, क्योंकि जिसका अंत:करण शुद्ध है, वह ही इसे जान सकता है। जो कोई बुद्धिमान श्रद्धालु सुख को सारहीन समझकर उसका परित्याग करता है, वह इस उपाय के द्वारा परमगति को प्राप्त करता है। मुझे इतना ही कहना था।''

भगवान कृष्ण की बात सुनकर अर्जुन ने कहा– ''अच्छा चलें! अब हम यहां से हस्तिनापुर चलते हैं और वहां धर्मात्मा राजा युधिष्ठिर से मिलकर आप द्वारिकापुरी को प्रस्थान करें।''

कृष्ण ने अपने सारथी दारुक को आज्ञा दी और दारुक थोड़ी ही देर में रथ जोतकर ले आया। कुछ ही क्षणों में यात्रा का सारा प्रबंध हो गया तथा अर्जुन और कृष्ण अपने समुदाय के साथ हस्तिनापुर के लिए चल दिए।

''मधुसूदन! महाराज युधिष्ठिर ने आपकी कृपा से विजय पाई, शत्रुओं का वध किया और अकंटक राज्य प्राप्त किया है। हम सभी पाण्डव आपसे सनाथ हैं। आपको ही नौका रूप में पाकर हम लोग कौरव सेना रूपी सागर को पार कर पाए हैं। आप ही इस जगत के आत्मा और सर्वश्रेष्ठ हैं।

''हे कृष्ण! मैं आपको उसी तरह जानता हूं, जिस तरह आप मुझे जानते हैं, आपके ही तेज से भूतों की उत्पत्ति होती है, आपकी प्रसन्नता में भगवती लक्ष्मी का वास है। मैं सुदीर्ध काल तक आपके गुणों का गायन करता हूं, तब भी उनका पार नहीं पा सकता।''

''हे जनार्दन! मैं अर्जुन सत्य कहता हूं, आपने मुझपर कृपा करके यह जो उपदेश दिया है, मैं उसका यथावत पालन करूंगा। हम लोगों का प्रिय करने के लिए आपने अद्भुत कार्य किया है। कौरवों की सेना को हमने आपके ही बल पर पराजित किया है और युद्ध में मेरी विजय भी आपके ही प्रताप की विजय है, क्योंकि आपने ही ऐसे उपाय किए जिनसे यह विजय हमें मिली।''

भाव-विभोर होकर अर्जुन कहने लगा– ''हे वासुदेव! दुर्योधन के साथ जब संग्राम छिड़ा था उस समय आपकी बुद्धि और पराक्रम से ही हमारी जीत हुई थी। कर्ण, पापी जयद्रथ और भूरिश्रवा के वध का ठीक उपाय भी आपने ही बताया था, अत: हे देवकीनंदन! आपने प्रेमवश मुझे जो-जो उपदेश दिए हैं, मैं उनका अक्षरश: पालन करूंगा।

आप द्वारिका जाना चाहते हैं तो जाइए, मेरी भी इसमें सम्मति है, राजा युधिष्ठिर के पास जाकर मैं भी आपके द्वारिका गमन के लिए आज्ञा दिलाने का प्रयत्न करूंगा। आप मामा वासुदेव और भैया बलभद्र को मेरा भी प्रणाम कहें।''

इस प्रकार बातचीत करते हुए कृष्ण और अर्जुन हस्तिनापुर पहुंच गए।

नगरवासियों ने जब कृष्ण और अर्जुन के आगमन का समाचार सुना तो वे निहाल हो गए। इंद्र के राजमहल के समान शोभा वाले राजमहल में जाकर दोनों मित्र क्रमश: महाराज युधिष्ठिर, अत्यंत बुद्धिमान विदुर, धृतराष्ट्र, भाई भीमसेन, नकुल, सहदेव, बुआ कुंती, गांधारी तथा द्रौपदी और सुभद्रा से मिले।

धृतराष्ट्र के पास पहुंचकर कृष्ण और अर्जुन ने अपने नाम बताकर उनके चरण स्पर्श किए, गांधारी, कुंती, युधिष्ठिर और भीम के पैर छुए। काफी देर तक वे महाराज धृतराष्ट्र के हाल

पूछने उनकी सेवा में बैठे रहे। रात्रि के समय धृतराष्ट्र ने सबको अपने-अपने स्थान पर जाने की आज्ञा दी। आज्ञा पाकर वे अपने महल में लौट आए।

जब रात बीत गई तो प्रात:काल संध्यावंदन करने के पश्चात् अर्जुन और कृष्ण, महाराज युधिष्ठिर के महल में गए। उस सुंदर भवन में प्रवेश करके दोनों महात्माओं ने धर्मराज के दर्शन किए। उत्तम आसनों पर विराजने के बाद युधिष्ठिर ने अनुभव किया कि ये दोनों कुछ कहना चाहते हैं। कृष्ण मुस्कुरा पड़े।

अर्जुन ने युधिष्ठिर का संकेत पाकर कहा– ''भाईजी! भगवान कृष्ण को यहां रहते बहुत दिन हो गए हैं, यदि आप अन्यथा न लें और स्वीकार करें तो अब ये द्वारिकापुरी जाना चाहते हैं। मेरी भी प्रार्थना है कि आप इन्हें जाने की आज्ञा दे दें।''

युधिष्ठिर तो पहले ही समझ गए थे, इसलिए हंसते हुए कहने लगे– ''आपका कल्याण हो माधव! आप शूरनंदन वासुदेव जी का दर्शन करने के लिए अवश्य ही द्वारिका जाइए और वहां हमारे मामा वासुदेव और मामी देवकी देवी को तथा भैया बलभद्र को हमारा नमस्कार कहिए। वहां जाकर हे कृष्ण! आप हमारा भी स्मरण बनाए रखिए।''

''हे केशव! आप अपने बंधु-बांधवों से मिलकर और माता-पिता को सांत्वना देकर पुन: मेरे अश्वमेध यज्ञ में पधारिए।''

यह कहते हुए युधिष्ठिर ने कृष्ण की यात्रा के लिए अनेक रत्न, धन-धान्य, भेंट, सुविधाएं प्रस्तुत करते हुए कहा– ''केशव! आपकी कृपा से ही हमारे शत्रु मारे गए और संपूर्ण पृथ्वी का राज्य हम लोगों के हाथ में आया। अत: यह सब आप ही का तो है।''

धर्मराज के ऐसा करने पर कृष्ण ने कहा– ''हे महाबाहो! ये रत्न, धन और समूची पृथ्वी के साथ मैं, मेरा घर, वैभव भी सब आप ही का तो है।''

इस प्रकार कृष्ण युधिष्ठिर से आज्ञा लेकर कुंती को प्रणाम करते हुए और उनकी प्रदक्षिणा करके, विदुर आदि से विदा लेकर, युधिष्ठिर और कुंती की आज्ञा से सुभद्रा को साथ लेकर अपने दिव्य रथ पर सवार होकर हस्तिनापुर से बाहर निकले।

उस समय नगर के निवासी मनुष्य उन्हें घेरे हुए चल रहे थे। कपिध्वज अर्जुन, सात्यकि, नकुल, सहदेव, विदुर जी तथा भीम ये सभी भगवान कृष्ण के साथ-साथ उन्हें विदा करते हुए काफी दूर तक उनके साथ आए। इसके बाद कृष्ण ने समस्त पाण्डवों और विदुर जी को लौटाकर दारुक तथा सात्यकि से कहा– ''अब घोड़ों को तेजी से हांको।'' सुभद्रा भी कृष्ण के साथ ही द्वारिका गई।

अर्जुन द्वारा यज्ञ अश्व की रक्षा

युधिष्ठिर द्वारा कुशल राज्य संचालन के बाद मुनिश्री वेदव्यास जी ने उन्हें परामर्श दिया कि अब उन्हें अश्वमेध यज्ञ करना चाहिए। यह निश्चय करके युधिष्ठिर ने सभी भाइयों से विचार करके यज्ञ की तैयारी प्रारंभ करा दी।

व्यासजी द्वारा निर्देशित सारी सामग्री का प्रबंध कर लिया गया और शास्त्रीय विधि के अनुसार यज्ञ के अश्व को छोड़ने के लिए बुला लिया गया।

यज्ञ के अश्व के साथ कौन वीर जाएगा, यह समस्या थी। व्यासजी ने इसका तुरंत निदान किया और कहा कि अर्जुन सब धनुर्धारियों में श्रेष्ठ हैं। ये सहनशील और धैर्यवान भी हैं। इन्होंने ही निवातकवचों का नाश किया था। यह संपूर्ण भूमंडल को जीतने की शक्ति रखते हैं, इनके पास दिव्य अस्त्र कवच हैं और दिव्य गुण संपन्न गाण्डीव है। निश्चय ही ये अश्वमेध यज्ञ के लिए छोड़े घोड़े की रक्षा करने में सभी प्रकार से सक्षम हैं।

व्यासजी द्वारा अर्जुन का नाम प्रस्तावित किए जाने पर महाराज युधिष्ठिर ने अर्जुन को बुलाया और कहा– ''हे अर्जुन! तुम्हारे ऊपर एक दिन पाण्डवों की विजय का दायित्व था, आज हस्तिनापुर राज्य की मर्यादा का दायित्व सौंपा जा रहा है। यह यज्ञ अश्व तुम्हारे संरक्षण में छोड़ा जा रहा है, रक्षा करना तुम्हारा दायित्व है।

''अश्व की रक्षा के समय जो राजा तुम्हारा सामना करने आएं, तुम्हें यह प्रयत्न करना होगा कि युद्ध न करना पड़े और साथ ही सभी को यज्ञ का आमंत्रण देते हुए उनसे समय पर यज्ञ में आने का निवेदन करना।''

यज्ञ का घोड़ा पृथ्वी की परिक्रमा करता हुआ आगे चल पड़ा। अर्जुन अपने सहयोगी सैनिकों के साथ उसके पीछे चले।

यज्ञ का घोड़ा सबसे पहले उत्तर दिशा की ओर गया। इस प्रदेश में जब घोड़ा पहुंचा। यह जानकर त्रिगर्त वीर कवच आदि से सजे, पीठ पर तरकस बांधे निकल पड़े और घोड़े को घेर लिया।

त्रिगर्त वीर, कुरुक्षेत्र युद्ध में जो मारे गए थे, उनके महारथी, पुत्रों और पौत्रादि ने अर्जुन के साथ बैर बांध लिया था। त्रिगर्त देश में जाने पर अर्जुन का उनके साथ घोर संग्राम हुआ।

अर्जुन ने उनका मन समझ लिया और शांतिपूर्वक उनका मन समझाने लगे। त्रिगर्तों ने उनकी एक न सुनी और बाण बरसाना आरंभ कर दिया। अर्जुन ने बहुतेरा मनाया, मना किया, पर उन्होंने उसकी एक न सुनी।

यह देखकर अर्जुन ने त्रिगर्त राज सूर्यवर्मा को बाण समूहों से बींध दिया। यह देखकर उनकी सेना के वीर, रथ की घरघराहट और पहियों की आवाज करते हुए समूह में धनंजय पर टूट पड़े।

सूर्यवर्मा ने भी अपने हाथ दिखाए। धृतवर्मा ने भी उन पर प्रज्ज्वलित शस्त्र फेंक दिया। कुछ क्षण के लिए तो अर्जुन इस अचानक आक्रमण से हतप्रभ रह गए और उनके हाथ से गाण्डीव ही छूट गया, किन्तु शीघ्र ही वे उठ खड़े हुए और संभलकर वार करने लगे। अब तो उनके शौर्य के सामने सारी सेना में भगदड़ मच गई। इस दृश्य को देखकर उस त्रिगर्त राज्य के अनेक लोगों ने भयभीत होकर अर्जुन से कहा– ''धनंजय! हम सब तुम्हारे आज्ञाकारी सेवक हैं, सदा तुम्हारे सेवक रहेंगे, हम विनीतदास की भांति तुम्हारे सामने खड़े हैं। आप हमें आज्ञा करें। हम आपकी हर सेवा करने को तैयार हैं।''

यह प्रस्ताव सुनकर अर्जुन प्रसन्न हो गए। अर्जुन ने कहा– ''हे वीरों ! मैं तो स्वयं ही यह कहने आया था कि परस्पर समभाव से हम एक केंद्रीय शक्ति के अधीन होकर यदि संपूर्ण आर्यावर्त को मानकर प्रेमपूर्वक विचरण करें तो आर्थिक और सामाजिक दोनों ही प्रकार की उन्नति कर पाएंगे।''

यह प्रस्ताव अर्जुन की प्रथम सफलता थी। सभी ने वहां अर्जुन का यथोचित सम्मान किया। उन्हें अनेक रत्नादि आभूषण भेंट किए और महाराज युधिष्ठिर के अश्वमेध यज्ञ में पूरी तैयारी के साथ आने का वचन भी दिया।

इसके बाद अर्जुन आगे बढ़ गए।

आगे प्राग्जयोतिषपुर में भगदत्त का पुत्र वज्रदत्त शासन करता था। उसने जब यह सुना कि पाण्डवों का घोड़ा मेरे राज्य की सीमा में आ गया, तो नगर से निकलकर उसने वह घोड़ा पकड़ लिया और उसे साथ लेकर नगर की ओर लौटने लगा।

अर्जुन ने उसके भाव को पहचानकर उस पर आक्रमण किया। वज्रदत्त अर्जुन का सामना करने के लिए अपने महल में भाग गया और वहां से कवच आदि पहनकर पूरी सेना के साथ भिड़ने आ गया।

अर्जुन के सामने उसके बाण बार-बार असफल हो रहे थे। भगदत्त के पुत्र ने भी अर्जुन का जमकर मुकाबला किया। वज्र के समान बाण भी चलाए पर एक न चली।

अंततोगत्वा ये वीर भी धराशायी हो गए। पृथ्वी पर लेटे वज्रदत्त से अर्जुन ने यहां भी महाराज युधिष्ठिर का संदेश दिया।

महाराज युधिष्ठिर ने चलते समय कहा था– ''अर्जुन स्मरण रहे, इस यात्रा में किसी भी राजा को मारना नहीं। ये यज्ञ हम मित्रता बढ़ाने के लिए कर रहे हैं, विजय पाने के लिए नहीं।''

''अत: हे महाराज वज्रदत्त! आप हमारे अश्वमेध यज्ञ का आमंत्रण स्वीकार कीजिए और हमें आश्वस्त कीजिए कि हमारे यज्ञ में अवश्य पधारेंगे।''

अपने प्राणों की इस प्रकार रक्षा हुई जान, वज्रदत्त अपने को अर्जुन की कृपा से अभिभूत अनुभव करने लगा। बाणों की चोट से आहत होते हुए भी उसने कहा– ''वीरवर! मैं भगदत्त का

पुत्र वज्रदत्त, पिता की मृत्यु का आपको कारण जानकर ही यह अवज्ञा कर बैठा, इसे क्षमा करना।

''आप वास्तव में उदार हैं। मैं प्रतिज्ञा करता हूं कि आपके अश्वमेध यज्ञ में यथाशक्ति धन्य-धान्य के साथ उपस्थित होऊंगा।''

महाभारत में सिंधुराज जयद्रथ का वध अर्जुन के हाथों हुआ था। प्राग्ज्योतिषपुर में भगदत्त के पुत्र वज्रदत्त के साथ संधि करने और उसे अश्वमेध में आमंत्रित करने के बाद अर्जुन का घोड़ा सिंधु प्रदेश में पहुंचा।

यज्ञ के घोड़े को अपने राज्य की सीमा के भीतर पाकर सिंधुदेश के क्रुद्ध क्षत्रिय अर्जुन से तनिक भी भयभीत नहीं हुए। वे पहले युद्ध में अर्जुन से परास्त हो चुके थे और अब अर्जुन को जीतना चाहते थे।

यह कार्य सफल करने के लिए उन वीरों ने महापराक्रमी पार्थ को चारों ओर से घेर लिया तथा अपने बाणों की वर्षा से आच्छादित कर दिया।

ये सिंधुवीर अपने हजारों रथों तथा अश्वों के घेराव से मन-ही-मन प्रसन्न हो रहे थे। अर्जुन उनके बल को पूरा होने देना चाहते थे, अत: धीरे-धीरे उनका उत्साह बढ़ा रहे थे।

अर्जुन ने संपूर्ण दिशाओं में बाणों का इंद्रजाल-सा फैला दिया। यह देखकर सिंधुदेश के वीर क्रोध में भरकर उनका जाल काटने में लग गए।

अर्जुन ने यह देख उन उन्मत्त योद्धाओं को समझाते हुए कहा– ''वीरो! मेरी बात ध्यान से सुनो, मैं यहां किसी का वध करने नहीं आया हूं। मैं अश्वमेध यज्ञ के इस अश्व के साथ सभी सीमाओं में जाकर मित्रता भाव से यज्ञ का निमंत्रण देने आया हूं।

वीरो! वह महाभारत खत्म हो चुका है, उसके परिणाम को भूलकर ही आगे हम कुछ कर सकते हैं। मेरा पुन: निवेदन है– जो वीर! 'मैं आपका हूं' कहकर मेरे सम्मुख खड़ा हो जाएगा,

मैं उस पर अस्त्र नहीं चलाऊंगा।''

अर्जुन से यह सुनकर धीरे-धीरे सारी सेना ही हथियार डालकर खड़ी हो गई।

कुछ अभिमानी वीर अभी भी अपनी कुंठा से मुक्त नहीं हो पा रहे थे, वे कट-कटकर गिरने लगे।

तभी इस प्रकार मार-काट से मुक्ति दिलाने के भाव से जयद्रथ की पत्नी और महाराज धृतराष्ट्र की पुत्री दु:शला अपने पुत्र सुरथ के बालक को साथ लेकर रथ पर सवार हो रणभूमि में उपस्थित हुई।

उसके आने का उद्देश्य यह था कि सभी योद्धा युद्ध छोड़कर शांत हो जाएं। अर्जुन के पास जाकर वह आर्त स्वर में विलाप करते हुए रोने लगी।

दु:शला को सामने देखकर अर्जुन ने धनुष नीचे डाल दिया।

बहन का विधिवत सत्कार करते हुए बोले– ''कल्याणी! बताओ मैं तुम्हारे किस कार्य आ सकता हूं?''

दु:शला ने कहा– ''भाई! यह तुम्हारे भांजे का पुत्र तुम्हें प्रणाम करता है, इसकी ओर देखो।''

यह जानकर अर्जुन की जिज्ञासा हुई– ''बहन इस बालक के पिता कहां हैं?''

दु:शला ने कहा– ''भैया! मेरे पुत्र सुरथ ने पहले से ही सुन रखा था कि अर्जुन के हाथों ही मेरे पिता की मृत्यु हुई है और जब उसने यह सुना कि तुम घोड़े के साथ-साथ यहां आ पहुंचे हो तो वह डर के मारे बेहोश हो गया है।

उसी दम उसके प्राण-पखेरू उड़ गए। उसकी यह दशा देख मैं तुम्हारे पास आई हूं।''

दु:शला का यह विलाप देखकर अर्जुन द्रवित हो गया और सिर नीचा करके कहा– ''बहन! इतना निराश न हो, मुझ पर विश्वास रख, मैं तेरा अहित नहीं करूंगा।''

''भैया! मैं जानती हूं वीरवर श्रेष्ठ धनुर्धारी अर्जुन को, उसकी क्षमता को, मैं तो चाहती हूं, दुर्योधन और जयद्रथ की कहानी समाप्त हो और नए सिरे से आत्मष्यता बने, सब सुखपूर्वक रहें, जिस प्रकार उत्तरा का परीक्षित है, उसी प्रकार यह सुरथ का पुत्र है। इसी को गोद लेकर मैं तुम्हारी शरण में आई हूं, मैं चाहती हूं कि सब योद्धा शांत हो जाएं और तुम इस निरीह शिशु पर कृपा करो।

यह तुम्हारा नाती तुम्हारे चरणों में सिर रखकर शांति की भीख मांगता है, अत: शांत हो जाओ। यह निरा अबोध है, कुछ नहीं जानता। इसके भाई-बंधु नष्ट हो चुके हैं, अत: इसके ऊपर दया करके क्रोध त्याग दो।''

दु:शला के इस प्रकार करुणापूर्ण विचार सुनकर अर्जुन को महाराज धृतराष्ट्र और गांधारी की याद आ गई। वे क्षत्रिय धर्म का तिरस्कार करते हुए बोले– ''राज्य के लोभी और अभिमान के पुतले उस नीच दुर्योधन को धिक्कार है, जिसके कारण हमने अपने सभी बंधु-बांधवों को यमलोक भेज दिया।''

यह कहते हुए अर्जुन ने अपनी इस बहन को सांत्वना दी और उससे प्रसन्नतापूर्वक मिलकर घर की ओर विदा किया। दु:शला ने भी अपने योद्धाओं को पीछे लौटाया और अर्जुन की प्रशंसा करते हुए, वह प्रसन्न होती हुई घर को लौट आई।

यज्ञ का घोड़ा एक के बाद एक देशों में चलता हुआ मणिपुर प्रदेश पहुंचा।

मणिपुर के राजा बभ्रुवाहन को जब यह पता चला कि यज्ञ के घोड़े के साथ उसके अपने पिता अर्जुन आ रहे हैं तो वह ब्राह्मणों के साथ बहुत-सा धन लेकर बड़ी विनय के साथ, दर्शन के लिए नगर से बाहर निकला।

मणिपुर नरेश को इस रूप में आता देखकर अर्जुन ने उसे क्षत्रिय धर्म का स्मरण कराते हुए कहा– ''पुत्र! तुम्हारा यह ढंग ठीक नहीं है। मैं इस पर तुमसे कुपित हूं। महाराज युधिष्ठिर के यज्ञ के घोड़े की रक्षा करता हुआ, तुम्हारे राज्य के भीतर आया हूं, तो फिर तुम मुझसे युद्ध क्यों

नहीं करते। ऐसा करके तुम क्षत्रिय धर्म से बहिष्कृत हो चुके हो। संसार में जीवित रहकर तुमने कोई पुरुषार्थ का काम नहीं किया। तभी तो मुझे युद्ध के लिए आया जानकर भी शांतिपूर्वक साथ ले जाने को आया है। यदि मैं हथियार रखकर खाली हाथ आता, तब तो तेरा इस प्रकार मिलना ठीक था।''

अर्जुन से इस प्रकार बातचीत हो ही रही थी कि धरती को चीरकर नागकन्या उलूपी वहां आ गई। उससे अपने स्वामी की कठोर बात नहीं सही गई। उसने कहा– ''वत्स! मैं तुम्हारी माता नागकन्या उलूपी हूं। मेरी बात मानो इससे तुम्हें धर्म की प्राप्ति होगी।

तुम्हारे पिता जीवन-भर युद्ध लड़ते रहे, इसलिए इन्हें इसके अतिरिक्त दूसरी भाषा आती ही नहीं। तुमने यह समझा होगा कि पिता आए हैं और तुम यहां के राजा हो, इसलिए तुम्हारे पिता का भी राज्य पर समान अधिकार है, क्योंकि तुम तो यह मानते हो कि तुम यहां भी अर्जुन के ही प्रतिनिधि हो, लेकिन ये तुम्हें अपना प्रतिनिधि न मानकर अपना प्रतिद्वंद्वी मान बैठे हैं। अत: तुम्हें सम्मानपूर्वक इनकी भाषा में ही इनका अभिवादन करना चाहिए।''

मां उलूपी से इस प्रकार सुनकर तेजस्वी बभ्रुवाहन ने मन-ही-मन युद्ध करने का निश्चय कर लिया और अपने कवच-कुंडल पहनकर सेना सहित अर्जुन के सम्मुख आ गया। उस वीर ने अपने प्रवीण पुरुषों द्वारा अर्जुन के सामने ही युद्ध का वह घोड़ा पकड़वा लिया और चुनौती भरे शब्दों में कहा– ''राजा बभ्रुवाहन, धनुर्धारी अर्जुन की चुनौती स्वीकार करता है और प्रणाम करते हुए बाणों से आपका अभिवादन करता है।''

राजा बभ्रुवाहन ने यह कहते हुए अर्जुन पर विष भरे बाणों की भयानक वर्षा प्रारंभ कर दी।

अर्जुन ने भी उसके इस प्रयास को देखकर अपनी प्रसन्नता प्रकट की और प्रत्युत्तर में दिव्यास्त्रों से रणक्षेत्र को ढक दिया। यह रण अर्जुन के लिए कष्टदायी सिद्ध हुआ। उनके इस युद्ध की कोई तुलना नहीं की जा सकती थी। असुरों और देवों से भी भयानक यह युद्ध अपनी चरम सीमा पर पहुंच रहा था।

बभ्रुवाहन ने हंसते-हंसते एक बाण अर्जुन के गले की हंसली में मार दिया जो सांप के अपने बिल में घुसने के समान अर्जुन के शरीर में प्रवेश कर गया और उसका छेदन करके धरती में समा गया। अर्जुन को इसके प्रभाव से बड़ी वेदना हुई और वह एक क्षण को बिलबिला गया तथा साथ ही निश्चेष्ट होकर लेट गया। थोड़ी देर बाद जब उसे होश आया तो अपने पुत्र की प्रशंसा करते हुए बोला– ''वत्स! आज मैं तुम्हारे पराक्रम से प्रसन्न हो गया हूं। तुम धन्य हो चित्रांगानंदन! लो अब मैं बाण मारता हूं।''

अर्जुन ने अपने नारात बाणों की वर्षा की, लेकिन बभ्रुवाहन के भल्ले के सामने वे सब कटकर रह गए। अर्जुन ने अपने दिव्य बाणों से बभ्रुवाहन की सोने की पताका और ध्वजा काट दी, उसके घोड़ों को मार डाला।

''अच्छा, तो ये बात है, लो पिता! अब पुत्र का वार संभालो।''

बभ्रुवाहन ने सर्प के समान जहरीले बाणों से अर्जुन को हताहत कर दिया और इसी बीच एक तीखा बाण अर्जुन के मर्मस्थल को बेध गया। वह मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़े।

बभ्रुवाहन भी बहुत शिथिल और घायल हो गया था, अत: वह भी पृथ्वी पर धराशायी हो गया।

चित्रांगदा ने जब रणभूमि में प्रवेश किया तो पुत्र और पति दोनों को धराशायी पाया। उसने जाना कि उसके पति मृत्यु को प्राप्त हो गए हैं तो वह कांप उठी और विलाप करने लगी। चित्रांगदा पति वियोग के दु:ख से संतप्त होकर विलाप करती हुई मूर्च्छित हो गई और पृथ्वी पर गिर पड़ी। कुछ देर बाद जब उसे होश आया तो उसने देखा, नागकन्या उलूपी दिव्यरूप धारण किए सामने खड़ी है।

उसे देखकर चित्रांगदा कहने लगी– ''बहन! तुम्हारे ही संकेत पर मेरे पुत्र ने अपने समग्र विजय पिता का वध किया है, रणभूमि में अचेत पड़े अपने स्वामी को आज तुम भी जी भरकर

देख लो, तुम तो श्रेष्ठ कर्म को जानने वाली बड़ी पतिव्रता हो ना, इसी से तुम्हारे पतिदेव तुम्हारे ही प्रयत्न से रणभूमि में मारे जाकर आज चिरनिद्रा में लीन सो रहे हैं।

हे बहन! मैं तुमसे अर्जुन के प्राणों की भिक्षा मांगती हूं, तुम इन्हें जीवित कर दो। तुम्हें सभी धर्मों का ज्ञान है, तीनों लोकों में तुम्हारी ख्याति फैली हुई है। अत: तुम स्वामी को जिला सकती हो।

मैं अपने पुत्र के लिए उतना शोक नहीं करती। मुझे तो अपने पति का ही अत्यंत शोक हो रहा है, जिनका मेरे यहां इस प्रकार अतिथि सत्कार किया गया।''

नागकन्या से ऐसा कहने के बाद चित्रांगदा अर्जुन के अचेत शरीर के पास जाकर बोली– ''प्रियतम उठो! मैंने तुम्हारा घोड़ा छुड़वा दिया है। तुम्हें तो महाराज युधिष्ठिर के यज्ञाश्व के पीछे-पीछे जाना है, फिर यहां कैसे सो रहे हो?

समस्त कौरवों के प्राण तुम्हारे ही अधीन हैं, तुम तो दूसरों के प्राणदाता हो, स्वयं कैसे प्राण त्याग दिए?''

''हे उलूपी! पतिदेव मृत्यु के कगार पर खड़े हैं, इन्हें भलीभांति निहार लो। तुमने ही पुत्र को उकसाकर स्वामी की हत्या कराई है, क्या इसका तुम्हें बिल्कुल शोक नहीं होता।''

''मेरा बालक मृत्यु की गोद में पड़ा है, वह चाहे सदा के लिए भूमि पर सोता रह जाए, पर निद्रा पर विजय पाने वाले अर्जुन की रक्षा तो हमें करनी ही है। अब तुम उपाय करो ताकि प्राणप्रिय पति जीवित हो सकें।

यदि तुमने ऐसा नहीं किया तो मैं भी प्राण त्याग दूंगी। लो मैं अब आमरण उपवास के लिए बैठती हूं।'' और ऐसा कहते हुए चित्रांगदा अनशन करके बैठ गई।

राजा बभ्रुवाहन मरे नहीं थे अचेत हुए थे। उन्हें जब होश आया तो उन्होंने अपनी मां को रणभूमि में पिता के अचेत शरीर के पास ही बैठे देखा। वह उन्हें इस दशा में देखकर दु:खी हो

उठे।

मां! आज तक सुखों में पली तुम! आज पृथ्वी पर अपने मृत पति के साथ अधीर हो मरने का निश्चय करके बैठ गई हो। संग्राम में जिनका वध करना किसी के लिए संभव नहीं है, उन्हीं मेरे पिता अर्जुन को आज यह अपने पुत्र के हाथों मृत्यु मुख में पड़ा देख रही हो। जान पड़ता है अंत काल आए बिना किसी भी जीव का मरना बड़ा कठिन है।

तभी तो इस संकट के समय मेरे तथा मेरी माता के प्राण नहीं निकल पाते।

''हाय ब्राह्माणो! मुझे धिक्कार है। मैं क्रूरकर्मी, महापापी अपने पिता का हत्यारा हूं। बताओ, मेरे लिए कौन-सा प्रायश्चित है?

''उलूपी मां! देखो, आज मैंने तुम्हारे भी स्वामी का वध कर डाला। यह शायद तुम्हारा कोई प्रिय कर्म होगा। पर मां मैं शपथ खाकर कहता हूं कि अब और जीवित नहीं रहूंगा।''

राजा बभ्रुवाहन ने दु:खी होकर आचमन करते हुए अत्यंत निराशा भरे स्वर में कहा– ''यदि मेरे पिता अर्जुन जीवित होकर नहीं उठे तो मैं इस भूमि में ही उपवास करके अपने प्राण त्याग दूंगा। पिता की हत्या का मेरे प्राणांत के अतिरिक्त अन्य कोई प्रायश्चित नहीं है। पाण्डु पुत्र धनंजय महान तेजस्वी धर्मात्मा मेरे अपने ही पिता थे। इनका वध करके मैंने महान पाप किया है। अब मेरा उद्धार कैसे हो सकता है?'' अब बभ्रुवाहन उपवास का आमरण व्रत लेकर, आचमन करके पृथ्वी पर बैठ गए।

उलूपी ने यह देखा तो इस संकट से इन सभी को उबारने के लिए उसने संजीवन मणि का स्मरण किया। नागों के जीवन की आधारभूत वह मणि उसके स्मरण मात्र से ही वहां आ गई। मणि को हाथ में लेकर नागकन्या उसकी विमाता उलूपी ने बभ्रुवाहन से कहा– ''बेटा उठो! शोक न करो, अर्जुन तुम्हारे द्वारा परास्त नहीं हैं। वे मनुष्य मात्र के लिए अजेय हैं। इंद्रादि देव भी इन्हें नहीं जीत सकते। यह तो मैंने तुम्हारे पिता का प्रिय करने के लिए मोहिनी माया दिखाई है,तुम अपने द्वारा किसी पापकर्म के होने की लेशमात्र भी शंका न करो। लो मैं यह दिव्य मणि

ले आई हूं, यह अपने स्पर्श से सदा ही मरे सर्पों को जीवित कर दिया करती है। इसे अपने पिता की छाती पर रख दो, इसका स्पर्श मात्र से ये जीवित होकर उठ खड़े होंगे।''

बभ्रुवाहन द्वारा अर्जुन की छाती पर वह मणि रखते ही वीरवर अर्जुन देर तक सोने के बाद जगे हुए से मनुष्य की तरह जीवित हो उठे।

अपने मनस्वी पिता को इस प्रकार सचेत देखकर उस वीर ने पिता के चरणों में गिरकर प्रणाम किया। उस समय इंद्र ने अर्जुन पर दिव्य फूलों की वर्षा की। आकाश में साधुवाद की ध्वनि गूंज उठी।

महाबाहु अर्जुन स्वस्थ होकर उठे और पुत्र बभ्रुवाहन को छाती से लगा लिया, उसका मस्तक चूम लिया।

इस बीच ही उनकी दृष्टि दूर खड़ी उलूपी के साथ चित्रांगदा पर पड़ी जो शोक से दुर्बल हो रही थी। उसे देख अर्जुन ने उलूपी से पूछा– ''कल्याणी! इस रणभूमि में तुम्हारे और बभ्रुवाहन की मां चित्रांगदा के यहां आने का कारण क्या है? मुझसे या मेरे पुत्र से अनजाने ही तुम्हारा अनिष्ट तो नहीं हो गया?''

उलूपी ने कहा– ''अनिष्ट हुआ नहीं होने से बच गया। तुम जानते हो, बभ्रुवाहन तुम्हारा ही पुत्र है, इसका राज्य और वैभव तुम्हारा भी उतना ही है, फिर इसके स्वागत को कायरता का प्रतीक बताकर तुमने इससे जिस प्रकार क्षत्रिय धर्म के पालन का आदेश दिया था, तुम्हारा यह कर्म ही तुम्हारा अनुचित आग्रह था।

तुम्हारे आदेश का पालन करने के लिए वह लड़ा, तुमने शरणागत का अपमान किया, इसलिए तुम्हें इसके बाण से घायल होकर अचेत होना पड़ा।

चित्रांगदा सीधे स्वभाव की है, वह यह बात नहीं जान पाई और तुम्हें इस प्रकार अचेत देखकर यह समझ बैठी कि तुम नहीं रहे। इसने यह जाना कि बभ्रुवाहन को युद्ध के लिए मैंने

भड़काया है, जबकि मैंने तो इसे मात्र तुम्हारा प्रिय करने के लिए ही कहा था।

यह क्षोभ और दु:ख में आमरण अनशन पर बैठ गई। बभ्रुवाहन को होश आया तो उसे भी अपने कृत्य पर पश्चातप हुआ तो मुझे संजीवनी मणि का ध्यान आ गया और इसके द्वारा वह मणि तुम्हारी छाती पर रखने मात्र से ही तुम्हारी मूर्च्छा टूट गई।

वास्तव में हम दोनों तो एक लंबे समय से तुम्हें न देख सकने के कारण केवल मात्र दर्शन की अभिलाषा से यहां आई थीं। अब कहो, तुम कैसे हो, स्वस्थ तो हो, घावों से अत्यधिक पीड़ा तो नहीं हो रही?''

ऐसा कहते हुए उलूपी ने बताया कि तुम्हारी यह मूर्च्छा भी तुम्हारे द्वारा शिखण्डी की आड़ में पितामह भीष्म का वध करने के कारण देवों और वसुओं की मंत्रणा के अधीन किया गया एक निवारक उपाय था। बभ्रुवाहन ही अपने बाणों से आपको मार गिरा, उस पाप से मुक्ति दिला सकता था, पुत्र ने विधाता के वशीभूत वैसा ही किया है।

''मैंने तो आपको पाप से छुटकारा दिलाया है और मेरा कोई भाव नहीं था।''

यह सुनकर अर्जुन के मन पर से पितामह की मृत्यु का भार भी उतर गया और उसे अपने पुत्र के रूप में एक अजेय योद्धा भी मिल गया।

अब अर्जुन ने कहा– ''वत्स! आने वाले चैत्र की पूर्णिमा के दिन महाराज युधिष्ठिर के यहां होने वाले अश्वमेध यज्ञ में तुम अवश्य आना, साथ में अपनी माता चित्रांगदा तथा उलूपी को भी ले आना।''

बभ्रुवाहन ने अर्जुन को आश्वस्त किया। अब अर्जुन वहां से विदा लेकर दक्षिण दिशा की ओर बढ़ गए।

मणिपुर से समुद्र की परिक्रमा करता हुआ यज्ञ का घोड़ा, अब पीछे की ओर लौटा। रास्ते में राजगृह नाम का नगर पड़ा। यहां सहदेव का पुत्र मेघसंधि वहां का राजा था। मेघसंधि ने उन्हें

युद्ध के लिए आमंत्रित किया और स्वयं रथ पर बैठकर नगर से बाहर निकला। उसने पैदल आते हुए अर्जुन पर धावा करते हुए कहा– ''भारत– क्यों इस घोड़े के पीछे-पीछे फिर रहे हो?''

मेघसंधि ने जैसे ही घोड़ा पकड़ने का प्रयास किया, अर्जुन ने युद्ध के लिए चुनौती दी।

दोनों में युद्ध प्रारंभ हुआ और बाण वर्ष शुरू हो गई। जब मेघसंधि रथ, धनुष और गदा से वंचित हो गया तो अर्जुन ने उसे समझाते हुए कहा– ''वत्स! क्षत्रिय धर्म के अनुसार तुमने पूरा पराक्रम दिखाया है, जाओ अब घर जाओ। तुम अभी बालक हो और यह घोड़ा हमने मित्रता के विस्तार के लिए छोड़ा है, किसी का वध करने के लिए नहीं।''

यह जानकर मेघसंधि को विश्वास हो गया। उसने कहा– ''राजन! मैं परास्त हो गया हूं, आपका कल्याण हो।''

मेघसंधि को यज्ञ में आमंत्रित करके अर्जुन का घोड़ा अनेक स्थानों से होता हुआ दक्षिण प्रदेश में चेदिदेश पहुंचा, जहां शिशुपाल का पुत्र शरभ राज्य करता था। उसने अर्जुन से परास्त होकर शास्त्रीय विधि के अनुसार उनकी पूजा की और यज्ञ में आना स्वीकार किया।

यहां से लौटकर अर्जुन का वह अश्व काशी, अंश, कौशल, किठान आदि देशों में होता हुआ दशार्ण पहुंचा। यहां के राजा चित्रांगद ने उनसे युद्ध किया और परास्त होकर यज्ञ में आना स्वीकार किया।

आगे बढ़ते हुए यज्ञ का घोड़ा निषादराज एकलव्य के राज्य में आया। एकलव्य के पुत्र ने युद्ध में उनको रोका, यहां बड़ा रोमांचकारी युद्ध हुआ। यहां से विजय प्राप्त करते हुए अर्जुन अश्व के साथ सौराष्ट्र, गोकर्ण और प्रभास क्षेत्र गए और वहां से द्वारिका।

द्वारिका में यदुवंशी बालकों ने उस घोड़े को बांध लिया और अपने साथ ले गए।

महाराज उग्रसेन और वसुदेव जी ने जब बालकों को घोड़ा ले जाते देखा तो उन्हें मना किया।

इसके बाद वे दोनों बड़े प्रेम से अर्जुन से मिले और विधि के अनुसार उनका पूजन किया। तत्पश्चात् अर्जुन उनसे आज्ञा लेकर पश्चिम समुद्र के तटवर्ती देशों से होते हुए पंजाब देश में आए। यहां उनका घोड़ा विचरता हुआ गांधार प्रदेश में पहुंचा।

शकुनि का पुत्र गांधारों में सबसे बड़ा वीर और महारथी था। वह बहुत बड़ी सेना के साथ अर्जुन का सामना करने के लिए आगे बढ़ा। उसके सैनिक शकुनि के वध का स्मरण करके क्रोध में भरे हुए थे। सभी ने धनुष बाण लेकर अर्जुन पर आक्रमण कर दिया।

अर्जुन ने उन्हें समझाकर लड़ने से रोका तथा युधिष्ठिर का हितकारी वचन भी सुनाया, किन्तु वह उनकी बात मानने के लिए तैयार नहीं हुए।

अनेक योद्धाओं ने घोड़े को चारों ओर से घेर लिया और पकड़ने के लिए आगे बढ़ने लगे। यह देखकर अर्जुन ने गाण्डीव से बाणों की वर्षा करके घोड़े को पकड़ने के लिए बढ़े हाथों को मस्तक सहित अलग कर दिया।

ऐसी मार पड़ने पर वे सभी सैनिक घोड़ा छोड़कर अर्जुन की ओर दौड़ पड़े। उन सभी गांधारों के द्वारा रोके जाने पर भी तेजस्वी वीर अर्जुन नाम से लेकर उनके सिर काटने और गिराने लगे। जब चारों ओर गांधारों का संहार आरंभ हो गया तो शकुनि के पुत्र ने आगे बढ़कर अर्जुन को रोका।

अर्जुन ने सामने देखा, जिस प्रकार जयद्रथ का सिर उड़ाया था, उसी प्रकार शकुनि पुत्र के शिरस्त्राण को अर्धचंद्राकार बाण से काट गिराया। यह देख गांधारों को बड़ा विस्मय हुआ और वे समझ गए कि अर्जुन ने जानबूझकर गांधार राज को जीवित छोड़ दिया है।

जब शकुनि पुत्र अपने भागते सैनिकों के साथ भाग खड़ा हुआ, तब उसकी मां अपने मंत्रियों को आगे करके नगर से निकली और उत्तम अर्घ्य लेकर रणभूमि में आ गई। आते ही उसने अपने रजोन्मत्त पुत्र को युद्ध करने से रोका और अर्जुन की पूजा की। अर्जुन ने भी पूजा स्वीकार करते हुए अनुग्रह किया और शकुनि के पुत्र को सांत्वना देते हुए कहा– ''तुमने जो मुझसे युद्ध

करने का विचार किया वह मुझे पसंद नहीं आया। तुम तो मेरे भाई हो। मैंने तो मां गांधारी और पिता धृतराष्ट्र को स्मरण करके युद्ध में तुम्हारी उपेक्षा की थी। इसी कारण तुम अब तक जीवित हो। केवल तुम्हारे अभद्र सैनिक ही मारे गए हैं। अब हम लोगों में शत्रुता के लिए कोई स्थान नहीं होना चाहिए। आपस का वैर शांत कर देना ही उचित है। अब तुम युद्ध को भूलकर मेरी बात सुनो, चैत्र पूर्णिमा के दिन महाराज युधिष्ठिर अश्वमेध यज्ञ कर रहे हैं, तुम सम्मानपूर्वक उस यज्ञ में आमंत्रित हो। तुम्हारी बुआ गांधारी तुम्हें पाकर प्रसन्न होंगी।''

गांधार राज से विदा लेकर अर्जुन विचरण करते घोड़े के पीछे-पीछे चल दिए। अब घोड़े ने हस्तिनापुर की राह पकड़ ली।

इसी समय महाराज युधिष्ठिर को अपने गुप्तचरों के द्वारा अश्वमेध यज्ञ के घोड़े के साथ सकुशल अर्जुन के लौटने का समाचार मिला। उनकी प्रसन्नता की कोई सीमा न रही।

उस दिन माघ मास के शुक्लपक्ष की द्वादशी तिथि थी और उसमें उत्तम नक्षत्र का योग था। यह जानकर महातेजस्वी युधिष्ठिर ने अपने भाई भीम, नकुल तथा सहदेव को बुलाया और भीमसेन को संबोधित करके कहा– ''तुम्हारे लघु भाई अर्जुन घोड़े के साथ-साथ आ रहे हैं। यज्ञ के आरंभ करने का समय भी निकट आ गया है। माघ की पूर्णिमा आ ही गई है। अब तो बीच में एक माह बाकी है।''

कृष्ण ने भी युधिष्ठिर को अर्जुन का संदेश देते हुए कहा– ''महाराज! अर्जुन कुशलपूर्वक लौट रहे हैं। उन्होंने संदेश भिजवाया है कि अश्वमेध यज्ञ में प्राय: सभी राजागण आएंगे। राजसूय यज्ञ में अर्घ्य देने वाली दुर्घटना की पुनरावृत्ति अब की बार नहीं होनी चाहिए। साथ ही मणिपुर नरेश बभ्रुवाहन आएंगे, वे मेरे धीर-वीर परम पराक्रमी पुत्र हैं, उनका सम्मान मेरे से भी अधिक होना चाहिए।''

दूसरे दिन प्रात: अर्जुन हस्तिनापुर राजधानी में पधार गए। यहां के घोड़े की टाप और उससे उड़ती धूल देखकर पुरवासी और अन्य सभी लोग प्रसन्न हो गए।

युधिष्ठिर ने यज्ञशाला के पास ही महाराज धृतराष्ट्र के साथ उनका स्वागत किया। अर्जुन ने दोनों के चरण छूकर प्रणाम किया। भीम का भी अर्जुन ने सत्कार किया। बाकी सभी ने अर्जुन का सम्मान किया। इसके बाद अर्जुन विश्राम के लिए चले गए।

अर्जुन का स्वर्ग गमन

अर्जुन ने कृष्ण के परमधाम जाने के पश्चात् जब यह सुना कि यादव आपस में ही मूसलों की मार से नष्ट हो रहे हैं तो उन्हें बड़ा दु:ख हुआ और वे द्वारिका अपने मामा से मिलने गए।

द्वारिका नगरी अब वह नहीं रही थी। विधवा-सी लग रही थी। कृष्ण की सोलह हजार रानियां अर्जुन को देखकर ही बिलख उठीं। अर्जुन का हृदय भी आंसुओं से भर उठा। सत्यभामा तथा रुक्मिणी की भी दशा दयनीय हो गई थी।

इधर से होकर अर्जुन मामा वसुदेव से मिले। वसुदेव ने उन्हें गले से लगा लिया और सभी पुत्रों तथा मित्रों का स्मरण करते हुए विलाप करने लगे। कृष्ण के स्नेह भाजन प्रद्युम्न तथा सात्यकि ही इस समय वृष्णि-वंशियों के काल का कारण बने हुए हैं। वास्तव में तो ऋषियों का शाप ही इस सर्वनाश का प्रधान कारण है।

''हे अर्जुन! अच्छा हुआ तुम यहां आ गए। अब श्रीकृष्ण ने जो कुछ कहा है, वह सब करो। यह राज्य, ये स्त्रियां और ये रत्न सब तुम्हारे अधीन हैं, अब मैं निश्चत होकर प्राण त्याग सकूंगा।''

''मामाजी! यादवों की यह दशा तो मुझसे नहीं देखी जाएगी। भाइयों से रहित यह धरती अब रहने लायक नहीं रही। महाराज युधिष्ठिर के भी परलोक गमन का समय आ गया है। मैं इन यदुकुल स्त्रियों, बच्चों और वृद्धों को अपने साथ इंद्रप्रस्थ ले जाता हूं, क्योंकि अब समुद्र कुछ ही दिनों में इस द्वारिका को अपने भीतर समा लेगा।''

अर्जुन के ऐसा कहने पर सारी तैयारियां प्रारंभ करा दी गईं, किन्तु प्रात:काल ही वसुदेव जी ने शरीर त्याग दिया। एक नया रौरव दृश्य उपस्थित हो गया।

वसुदेव जी को जलांजलि देकर अर्जुन जब हस्तिनापुर लौटने लगे तो उनके साथ यादव स्त्रियों, बच्चों और बूढ़ों का पूरा काफिला था, चलते हुए वे पंचनद प्रदेश में पहुंचे, वहीं पड़ाव

डाला।

यह सब देख वहां के लुटेरों के मन में लोभ आ गया। आमीर जाति के लोगों ने लूटमार शुरू कर दी। अर्जुन ने उन्हें चेतावनी दी, किन्तु उन्होंने अर्जुन की बातों पर कोई ध्यान नहीं दिया। अर्जुन उनके विरोध में गाण्डीव पर बाण ही नहीं चला सके। वह मानो पूरी विद्या ही भूल चुके थे। वे न रत्नों की रक्षा कर सके, न स्त्रियों की। उन्होंने अपने प्रयास में कमी नहीं की, बाण समाप्त हो गए तो धनुष की नोक से ही वार करने लगे, लेकिन सामने आती देवों द्वारा निश्चित की गई पराजय को नहीं टाल सके।

लंबी-लंबी सांस लेते हुए वे दैव की विडम्बना जानकर उदास हो गए। अपहरण से बची स्त्रियों, आभूषणों सहित वे कुरुक्षेत्र लौट आए। यहां उन्होंने अपने साथ आए परिवारों को यथा स्थान बसा दिया। कोष को लेकर इंद्रप्रस्थ आ गए। उन्हें सभी को वहां का निवासी बना दिया।

व्यासजी ने जब अर्जुन के मुख से यह वृत्तांत सुना तो कहा– ''वत्स! वृष्णि और अंधक तो ब्राह्मणों के पास से दग्ध होकर मरे हैं। तुम उनके लिए शोक न करो। तुमने सब प्रकार से अपना कर्तव्य पूरा कर लिया है। अब तुम्हारे परलोक गमन का समय आ गया है, यही तुम लोगों के लिए श्रेयस्कर है। तुम्हारे अस्त्र-शस्त्रों का प्रयोजन भी पूरा हो चुका है, इसलिए जैसे वे मिले थे, उसी प्रकार चले भी गए।''

व्यासजी से आज्ञा लेकर अर्जुन हस्तिनापुर लौट आए। महाराज युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव तथा द्रौपदी ने स्वर्ग के लिए महाप्रस्थान किया। इस मार्ग में हिमालय पर चलते हुए अर्जुन का शरीर पूरा हो गया।

एक वीर योद्धा, श्रेष्ठ धनुर्धारी अपने कर्तव्य को पूरा करते हुए अंत में उत्तम स्थान को प्राप्त हुआ।

□ □ □